अल-रिसाला

जुलाई-अगस्त 2024

अल-रिसाला

जुलाई-अगस्त 2024

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

मसाइल-ए-मिल्लत	4
हिकमत और शुक्र	5
पैग़ंबर का किरदार	6
उम्मीद का निज़ाम	8
फ़हम-ए-क़ुरआन	9
क़ुरआन की तफ़्सीर	11
क़ुबूलियत-ए-दुआ में ताख़ीर	13
नेकी का अमल	14
नरमी का सुलूक	15
दानिशमंदाना तरीक़ा	17
आख़िरत का मुआशरा	18
बुढ़ापा आख़िरी मौक़ा	20
बे-सब्री नहीं	21
नतीजा-ख़ेज़ अमल	22
बे-तहक़ीक़ ख़बर	24
अमीर मुआविया का रोल	25
जदीद ज़ेहन और इस्लाम	26
आलमी पैग़ाम-रसानी	28
आज़ादी-ए-राय का माहौल	29

अम्न और इंसाफ़ 30
नया ज़माना, नई प्लानिंग 32
क़ौम की तरक़्क़ी 36
क़सूर अपना निकल आया 37
क्वालिटी की अहमियत 39
लफ़्ज़ और मअनी 40
ज़मीन अपने ख़ात्मे की तरफ़ 41
आइडियोलॉजी, न कि तलवार 44
मुताला-ए-हदीस 48
डायरी : 1986 56
एक नेक इंसान का इंतक़ाल 63
ख़बरनामा इस्लामी मरकज़— 283 67

मसाइल-ए-मिल्लत

फ़र्द-ए-मिल्लत के मसाइल का जो हल है, वही ख़ुद मिल्लत के मसाइल का हल भी है। मिल्लत का एक फ़र्द अपनी ज़ाती कोशिश से अपनी ज़िंदगी की तामीर करता है। इसी तरह मजमूआ-ए-अफ़राद, जिसका नाम मिल्लत है, इसके मसाइल भी इसकी अपनी तामीरी कोशिशों से हल होंगे। कोई दूसरा इसके मसाइल को हल करने वाला नहीं है।

इस दुनिया में एक भाई कभी दूसरे भाई के लिए नहीं कमाता। कोई रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार के लिए लड़ाई नहीं लड़ता। यह बात हर शख़्स जानता है। इसलिए हर शख़्स पहली फ़ुर्सत में 'अपनी तामीर आप' के उसूल पर अपनी ज़िंदगी की जद्दोजहद में लग जाता है, मगर अजीब बात है कि मिल्लत का सवाल सामने आते ही तमाम लोग बिलकुल दूसरे अंदाज़ से सोचने लगते हैं। वे समझते हैं कि मिल्लत के मसाइल का ताल्लुक़ ख़ुद मिल्लत से नहीं, बल्कि दूसरों से है। इसका ताल्लुक़ हुकूमत से है, इंतज़ामिया से है, फ़लाँ-फ़लाँ कट्टर जमातों और गिरोहों से है।

कोई कहता है कि मिल्ली मसले के ज़िम्मेदार फ़लाँ-फ़लाँ सरकारी अफ़सर हैं, इसलिए इन अफ़सरों को बर्ख़ास्त कराओ। कोई कहता है कि कट्टर जमातें इसकी ज़िम्मेदार हैं, उनकी साज़िशों का पर्दाफ़ाश करने के लिए उनके ख़िलाफ़ धुआँ-धार मज़ामीन शाए किए जाएँ। कोई कहता है कि हुक्मराँ पार्टी इसकी ज़िम्मेदार है, इसलिए इलेक्शन में इस पार्टी के उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ वोट देकर उन्हें शिकस्त दो। ये बातें मज़ाकिया हद तक ग़लत हैं और इस ग़लती के ज़िम्मेदार मुसलमानों के रहनुमा हैं। ये रहनुमा अपने ज़ाती मसाइल को तो हमेशा हकीमाना तदबीर के ज़रिये हल करते हैं और मिल्ली मसाइल के बारे में पुरजोश तक़रीरें करके पूरी क़ौम का मिज़ाज बिगाड़ते हैं। वे मिल्लत के अंदर तामीर के बजाय एहतिजाज का ज़ेहन बनाते हैं।

करने का असल काम यह है कि सबसे पहले मिल्लत के अफ़राद में शऊर पैदा करने का काम किया जाए। उनके अंदर आला इंसानी औसाफ़ पैदा किए जाएँ। क़ुरआन में बताया गया है—

"बेशक अल्लाह किसी क़ौम की हालत को नहीं बदलता, जब तक कि वे उसे न बदल डालें, जो उनके जी में है।"

(क़ुरआन, 13:11)

यानी जो क़ौम के ज़वाल-याफ़्ता अफ़राद के दिलों में है। इसका मतलब यह है कि कोई गिरोह अगर ख़ुदा के इज्तिमाई नुसरत को पाना चाहता है, तो उसे अपने अफ़राद की इस्लाह पर अपनी ताक़त को सर्फ़ करना चाहिए।

हिकमत और शुक्र

क़ुरआन की सूरह लुक़मान की एक आयत यह है—

وَلَقَدْ آتَيْنَا لُقْمَانَ الْحِكْمَةَ أَنِ اشْكُرْ لِلَّهِ وَمَنْ يَشْكُرْ فَإِنَّمَا يَشْكُرُ لِنَفْسِهِ وَمَنْ كَفَرَ فَإِنَّ اللَّهَ غَنِيٌّ حَمِيدٌ .

"और हमने लुक़मान को हिकमत अता फ़रमाई कि अल्लाह का शुक्र करो और जो शख़्स शुक्र करेगा, तो वह अपने ही लिए शुक्र करेगा और जो नाशुक्री करेगा, तो अल्लाह बेनियाज़ है, ख़ूबियों वाला है।" (क़ुरआन, 31:12)

इससे मालूम हुआ कि शुक्र से पहले हिकमत ज़रूरी है। शुक्र बिला-शुब्हा सबसे बड़ी इबादत है, लेकिन साहिब-ए-शुक्र बनने से पहले ज़रूरी है कि आदमी साहिब-ए-हिकमत बन चुका हो। शुक्र अगर शुक्र है, तो हिकमत प्री-शुक्र (pre-shukr) की हैसियत रखती है।

शुक्र की निस्बत से हिकमत (wisdom) की अहमियत यह है कि फ़ितरत के क़ानून के तहत ज़िंदगी में हमेशा ऐसा होता है कि यहाँ नाशुक्री के अस्बाब मौजूद रहते हैं। कोई इंसानी मुआशरा कभी शिकायत, मनफ़ी सोच और ना-ख़ुशगवार तजुर्बे से ख़ाली नहीं हो सकता। इस क़िस्म के हालात इंसान को निहायत आसानी से नाशुक्री की नफ़्सियात में मुब्तला कर देते हैं। उसका दिमाग़ नफ़रत और शिकायत के ख़्यालात से भर जाता है। ऐसी हालत में शुक्र की नफ़्सियात में जीने के लिए उस चीज़ की ज़रूरत होती है, जिसे क़ुरआन में हिकमत कहा गया है। हिकमत आदमी को इस क़ाबिल बनाती है कि वह मनफ़ी हालात के बावजूद मुसबत (positive) अंदाज़ में सोच सके। शिकायत के अस्बाब के बावजूद वह शिकायत का ज़ेहन अपने अंदर न पैदा होने दे। दूसरों की तरफ़ से इश्तिआल-अंगेज़ी (provocation) के बावजूद वह अपने आपको इश्तियाल (enraged) में आने बचाए। नाइंसाफ़ी का तजुर्बा होने के बावजूद वह नाइंसाफ़ी और हक़-तल्फ़ी से ऊपर उठकर सोचे।

इसी क़िस्म की आला सोच का नाम हिकमत है। जो लोग अपने अंदर इस क़िस्म की आला सोच पैदा करें, उन्हीं के लिए ऐसा मुमकिन है कि उनके अंदर हक़ीक़ी मअनों में शुक्र के जज़्बात परवरिश पाएँ। शुक्र के लिए एक तैयार ज़ेहन (prepared mind) दरकार है। तैयार ज़ेहन के बग़ैर शुक्र की इबादत मुमकिन नहीं है।

पैग़ंबर का किरदार

क़ुरआन की सूरह साद में पैग़ंबर के किरदार को इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

قُلْ ما أَسْئَلُكُمْ عَلَيْهِ مِنْ أَجْرٍ وَما أَنَا مِنَ الْمُتَكَلِّفِينَ.

"कहो कि मैं इस काम पर तुमसे कोई अज्र नहीं माँगता और न मैं तकल्लुफ़ करने वालों में से हूँ।" (क़ुरआन, 38:86)

क़ुरआन की इस आयत में पैग़ंबर के किरदार को दो अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है— एक यह कि पैग़ंबर अपने मुख़ातिबीन से अज्र का तालिब नहीं होता। दूसरा यह कि वह तकल्लुफ़ करने वाला इंसान नहीं होता। ये दोनों बातें दरअसल एक ही हक़ीक़त के दो पहलू हैं। ये नबी के असली किरदार— ख़ुदा की ओर बुलाने वाली शख़्सियत— को बताती हैं। पैग़ंबर की शख़्सियत का एक पहलू यह है कि वह अपने मदऊ से किसी बदले का तालिब नहीं होता है और पैग़ंबर की शख़्सियत का दूसरा पहलू यह है कि वह तकल्लुफ़ से बिलकुल पाक इंसान होता है।

तकल्लुफ़ का मतलब तसन्नो (to pretend) है यानी एक ऐसा काम करना, जो आदमी के दिल की आवाज़ न हो, बल्कि वह किसी मस्लहत की बिना पर दिखावे के तौर पर इसे इख़्तियार करे। पैग़ंबर जो कुछ करता है, वह तमाम-तर अपनी चाहत के तहत करता है। वह हक़ की पैग़ाम-रसानी काम दूसरों से किसी उम्मीद की बिना पर शुरू नहीं करता, बल्कि वह जो कुछ करता है, ख़ुद अपने तक़ाज़े के तहत करता है।

असल यह है कि काम की दो सूरतें हैं— एक, बतौर पेशा काम करना और दूसरा, बतौर मिशन काम करना। जब कोई आदमी बतौर पेशा एक काम करता है, तो पहले दिन से उसे यह उम्मीद होती है कि लोगों की तरफ़ से उसे फ़लाँ क़िस्म का माद्दी फ़ायदा हासिल होगा। मिशन का मामला इसके बरअक्स है। मिशन वाले आदमी के लिए मिशन उसकी ज़िंदगी का मक़सद होता है, न कि दूसरों की निस्बत से रोज़गार हासिल करना।

यही मामला हर उस इंसान का है, जो लोगों को ख़ुदाई तालीम से आगाह करे। हक़ से आगाह करने वाले को भी इसी पैग़ंबराना मॉडल को इख़्तियार करना है। सच्चा हक़ से आगाह करने वाला वह है, जिसके लिए उसका मक़सद, किसी भी एतिबार से, प्रोफेशन न हो, बल्कि इस काम की हैसियत उसके लिए तमाम-तर मिशन की हो। इस सिफ़त के बग़ैर कोई शख़्स सही तौर पर ख़ुदा के मंसूबे से आगाह करने वाला नहीं बन सकता।

उम्मीद का निज़ाम

क़ुरआन की एक आयत का तर्जुमा यह है—

وَما أَصابَكُمْ مِنْ مُصِيبَةٍ فَبِما كَسَبَتْ أَيْدِيكُمْ وَيَعْفُوا عَنْ كَثِيرٍ.

"जो मुसीबत भी तुमको पहुँचती है, तो वह तुम्हारे हाथों के किए हुए कामों ही से पहुँचती है और बहुत-से क़सूरों को वह माफ़ कर देता है।" (क़ुरआन, 42:30)

क़ुरआन की यह आयत बताती है कि आदमी जब भी दुनिया में किसी मुसीबत से दो-चार होता है, तो वह इसके अपने ही किसी अमल का नतीजा होता है। इस दुनिया में किसी दूसरे की ज़्यादती की शिकायत करना बे-मअनी है। जब हर आदमी ख़ुद अपने किए को भुगत रहा हो, तो दूसरों के ख़िलाफ़ शिकायत और एहतिजाज करना सिर्फ़ वक़्त ज़ाए करना है, क्योंकि इसका कोई फ़ायदा नहीं।

यह क़ुदरत का बनाया हुआ निज़ाम है और इस निज़ाम में हमारे लिए ख़ुशखबरी है। वह हमारे लिए अज़ीमुश्शान उम्मीद की हैसियत रखता है।। इस क़ुदरती निज़ाम ने हमारे मसाइल के हल को ख़ुद हमारे अपने हाथ में दे दिया है। हमें इसका मुहताज नहीं किया कि हम किसी दूसरे की मेहरबानी का इंतज़ार करें।

आदमी जिन मसाइल से दो-चार होता है, अगर इसका सबब कुछ दूसरे लोग होते, तो गोया कि हम दूसरों के ऊपर निर्भर होते। हमें दूसरों की इनायत का इंतज़ार करना पड़ता, मगर अल्लाह तआला ने अपनी दुनिया का निज़ाम इस तरह बनाया कि यहाँ हर आदमी का मामला उसके अपने हाथ में रख दिया, ताकि हर आदमी अपनी ही कोशिश से अपनी ज़िंदगी की तामीर कर सके। हर आदमी का मुस्तक़बिल ख़ुद उसके अपने इख़्तियार में हो।

कभी ऐसा होता है कि आदमी नादानी की बिना पर नुक़सान उठाता है, ऐसे लोग दोबारा दानिशमंदी का तरीक़ा इख़्तियार करके अपने आपको नुक़सान से बचा सकते हैं। कभी किसी का मामला ग़ैर-मंसूबाबंद अंदाज़ में काम करने की वजह से बिगड़ जाता है, उसके लिए मौक़ा है कि आइंदा वह मंसूबाबंद अंदाज़ में काम करके नए सिरे से अपने मामले को दुरुस्त कर ले। कभी ऐसा होता है कि बे-सब्री की रविश को अपनाकर आदमी मुसीबत में फँस जाता है, अब उसके लिए मुमकिन है कि वह सब्र की रविश को अपनाकर दोबारा अपने आपको मुसीबतों से बचा ले। कभी कुछ लोग जज़्बाती इक़्दाम करके अपने को बरबादी में डाल देते हैं, उनके लिए मौक़ा है कि वे हक़ीक़त-पसंदी के उसूल पर चलकर दोबारा कामयाबी की मंज़िल तक पहुँच जाएँ।

फ़हम-ए-क़ुरआन

कहा जाता है कि क़ुरआन मजीद में एक तरतीब है और इसके नज़्म को जाने बग़ैर इसके मअनी तक रसाई नहीं हो सकती। नज़्म-ए-क़ुरआन (structural coherence) फ़हम-ए-क़ुरआन क़ुरआन को समझने की

बुनियाद है। यह जुमला एक बयान है। इस क़िस्म का कोई बयान हमेशा किसी दलील की बुनियाद पर होता है। इस मामले में दलील सिर्फ़ एक चीज़ हो सकती है। वह यह कि क़ुरआन या हदीस में इस मफ़हूम का एक बयान लफ़्ज़न मौजूद हो। इस मामले में किसी क़िस्म की इस्तिंबाती दलील (inferential argument) काफ़ी नहीं। जब तक यह बात क़ुरआन और सुन्नत में लफ़्ज़न मौजूद न हो, वह सिर्फ़ एक राय है, जो इस्तिंबात के दर्जे में रहेगा, इसका दर्जा हरगिज़ एक मज़बूत दलील पर क़ायम बयान का नहीं हो सकता।

मसलन— एक शख़्स अगर यह कहे कि क़ुरआन-फ़हमी के लिए तक़्वा ज़रूरी है, तो उसके पास क़ुरआन की दलील मौजूद होगी, जिसमें यह कहा गया है—

وَاتَّقُوا اللَّهَ وَيُعَلِّمُكُمُ اللَّهُ.

अल्लाह से डरो और अल्लाह तुम्हें सिखाता है।

(क़ुरआन, 2:282)

इसी तरह कोई यह कहे कि क़ुरआन-फ़हमी के लिए तदब्बुर ज़रूरी है, तो उसके पास भी हवाले के लिए यह आयत मौजूद होगी—

لِيَدَّبَّرُوا آيَاتِهِ.

ताकि लोग उसकी आयतों को ध्यान से समझें।

(क़ुरआन, 38:29)

इसी तरह क़ुरआन में एक मुक़ाम पर पहाड़ और दूसरे फ़ितरी अशिया का ज़िक्र है। इसके बाद यह फ़रमाया गया है—

إِنَّمَا يَخْشَى اللَّهَ مِنْ عِبَادِهِ الْعُلَمَاءُ.

अल्लाह से सचमुच वही डरते हैं, जो उसके बंदों में इल्म वाले होते हैं। (क़ुरआन, 35:28)

इस पर तदब्बुर करने से यह बात मालूम होती है कि कायनात का इल्म क़ुरआन-फ़हमी में मददगार है, लेकिन जो शख़्स यह कहे कि नज़्म-ए-आयात का इल्म क़ुरआन-फ़हमी के लिए कुंजी का दर्जा रखता है, तो उसे इस क़िस्म की कोई वाज़ेह दलील देनी चाहिए।

इस मामले पर ग़ौर किया जाए, तो यह हक़ीक़त सामने आती है कि सारे क़ुरआन में कहीं भी लफ़्ज़न यह बात मौजूद नहीं है कि नज़्म-ए-क़ुरआन फ़हम-ए-क़ुरआन की कुंजी है। इसके बरअक्स यह बात लफ़्ज़न मौजूद है कि तक़्वा की सिफ़त पैदा करो, तो तुम क़ुरआन को समझने वाले बन जाओगे या तदब्बुर की सिफ़त पैदा करो, तो तुम क़ुरआन को समझने वाले बन जाओगे। ऐसी हालत में यह बात न क़ाबिल-ए-फ़हम है कि कोई तालिब-ए-इल्म किस तरह ऐसा करे कि क़ुरआन-ए-फ़हमी का जो उसूल क़ुरआन में लफ़्ज़न मौजूद है, उसे वह छोड़ दे और जो उसूल क़ुरआन में लफ़्ज़न मौजूद नहीं है, उसे वह इख़्तियार करे।

क़ुरआन की तफ़्सीर

क़ुरआन की एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

وَلْتَكُنْ مِنْكُمْ أُمَّةٌ يَدْعُونَ إِلَى الْخَيْرِ وَيَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَأُولَئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ.

“और चाहिए कि तुम लोगों में एक गिरोह हो, जो भलाई की तरफ़ बुलाए और ताकीद करे नेकी की और मना करे बुराई से और वही लोग कामयाब हैं।” (क़ुरआन, 3:104)

इस तर्जुमे के मुताबिक़ इस आयत में जो बात कही गई है, वह सिर्फ़ ‘रेकमेंडेशन’ के मअनी में है, वह ‘ऑब्लिगेशन’ के मअनी में

नहीं; लेकिन लोगों ने इसकी तफ़्सीर अपने ज़ौक़ के मुताबिक़ की है और इसकी तफ़्सीर ऐसे अल्फ़ाज़ में की है, जो आयत के अल्फ़ाज़ के मुताबिक़ नहीं, मसलन— साहिब-ए-तदब्बुर-ए-क़ुरआन ने इसकी तफ़्सीर इन अल्फ़ाज़ में की है।

> "हमारे नज़दीक इस आयत से इस उम्मत के अंदर ख़िलाफ़त के क़ियाम का वाजिब होना साबित होता है। चुनाँचे इसी हुक्म की तामील में मुसलमानों ने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की वफ़ात के बाद पहला काम जो किया, वह ख़िलाफ़त आला मिनहाज-उल-नबूवत का क़ियाम था। इस इदारे का बुनियादी मक़सद यह था कि वह इस अम्र की निगरानी करे कि मुसलमान अल्लाह के रास्ते से हटने न पाएँ। इसके लिए जो तरीक़े इख़्तियार करने थे, वे उसूली तौर पर तीन थे— दावत इलल-ख़ैर, अम्र बिल-मअरूफ़, नही अनिल-मुनकर! इन्हीं तीन से ख़िलाफ़त-ए-राशिदा के दौर में वह तमाम शोबे वजूद में आए, जो मिल्लत की तमाम अंदरूनी व बाहिरी ज़िम्मेदारियों के अदा करने का ज़रिया है। 'व उलाइका हुमुल मुफ़्लिहून' का ताल्लुक़ सिर्फ़ इस मख़्सूस गिरोह ही से नहीं है, बल्कि यह इशारा पूरी उम्मत की तरफ़ है कि जो उम्मत अल्लाह के रास्ते पर क़ायम रहने के लिए यह एहतिमाम करेगी, वही दुनिया और आख़िरत में फ़लाह हासिल करने वाली बनेगी।"
>
> (तदब्बुर क़ुरआन, जिल्द 2, सफ़्हा 155)

आयत के अल्फ़ाज़ के मुताबिक़, जो चीज़ रज़ा-काराना (voluntarily) दर्जे में मतलूब थी, उसे अल्फ़ाज़ बदलकर हुक्म के दर्जे में मतलूब बना दिया गया। ऐसे अल्फाज़ इस्तेमाल किए गए हैं, जिससे यह समझ में आता है कि यह बात उम्मत के लिए हुक्म के दर्जे में है।

क़ुबूलियत-ए-दुआ में ताख़ीर

एक हदीस-ए-क़ुदसी इन अल्फ़ाज़ में आई है—

ثَلَاثٌ لَا تُرَدُّ دَعْوَتُهُمْ، الإِمَامُ العَادِلُ، وَالصَّائِمُ حِينَ يُفْطِرُ، وَدَعْوَةُ المَظْلُومِ يَرْفَعُهَا فَوْقَ الغَمَامِ، وَتُفَتَّحُ لَهَا أَبْوَابُ السَّمَاءِ، وَيَقُولُ الرَّبُّ عَزَّ وَجَلَّ: وَعِزَّتِي لَأَنْصُرَنَّكِ وَلَوْ بَعْدَ حِينٍ.

"तीन आदमी की दुआ रद्द नहीं की जाती है— इंसाफ़-पसंद हाकिम, रोज़ेदार जब वह इफ़्तार करता है और मज़लूम की दुआ। अल्लाह इन दुआओं को बादलों के ऊपर उठाता है और उसके लिए आसमान के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं और अल्लाह कहता है— मेरी इज़्ज़त की क़सम! मैं ज़रूर तुम्हारी मदद करूँगा, अगरचे देर में हो।"

(जामे तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2526)

इस हदीस में दुआ की क़ुबूलियत के बारे में तीन अल्फ़ाज़ आए हैं— मज़लूम, आदिल और साईम (रोज़ेदार), मगर ये तीन अल्फ़ाज़ महदूदियत के लिए नहीं हैं, बल्कि वे अलामती तौर पर हैं यानी यह हदीस हक़ीक़ी (genuine) दुआ के बारे में है। इसका मतलब यह है कि अगर कोई अल्लाह का बंदा अपने रब से सच्चे दिल से एक दुआ करे और उसकी यह दुआ एक हक़ीक़ी दुआ हो यानी वह दुआ, जो अल्लाह रब्बुल आलमीन के नज़दीक क़ुबूलियत का इस्तिहक़ाक़ रखती हो, तो ऐसी दुआ ज़रूर क़ुबूल होती है। अगरचे बंदे को इसकी क़ुबूलियत के लिए इंतज़ार करना पड़े।

इंतज़ार की शर्त इसीलिए है कि अल्लाह रब्बुल आलमीन के अपने कुछ क़वानीन हैं। इन क़वानीन की रियायत ही से दुआ क़ुबूल

की जाती है। इंसान को चाहिए कि दुआ के बाद वह उसकी क़ुबूलियत के लिए इंतज़ार करे। इंतज़ार का मक़सद यह होता है कि उस मुद्दत तक वह सब्र करे, जबकि अल्लाह रब्बुल आलमीन के क़ानून के मुताबिक़, उसकी क़ुबूलियत की शर्त पूरी हो।

क़ुबूलियत-ए-दुआ में ताख़ीर ख़ुद बंदे की मस्लहत के लिए होती है। इसका सबब यह है कि कोई बंदा जब दुआ करता है, तो वह ख़ुद अपने तक़ाज़े के मुताबिक़ दुआ करता है, लेकिन दुआ की क़ुबूलियत का वक़्त अल्लाह रब्बुल आलमीन की तरफ़ से तय किया जाता है। बंदे को चाहिए कि वह हमेशा पुर-उम्मीद रहे, वह मायूसी के बग़ैर रहमत-ए-इलाही के नुज़ूल का इंतज़ार करे।

नेकी का अमल

क़ुरआन की एक आयत का एक जुज़ यह है—

وَما كانَ اللَّهُ لِيُضِيعَ إِيمانَكُمْ إِنَّ اللَّهَ بِالنَّاسِ لَرَؤُفٌ رَحِيمٌ.

"और अल्लाह ऐसा नहीं कि तुम्हारे ईमान को ज़ाया कर दे। बेशक अल्लाह लोगों के साथ शफ़क़त करने वाला, मेहरबान है।" (क़ुरआन, 2:143)

इस आयत का पस-ए-मंज़र यह है कि जब पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम मदीना आए, तो आप बैतुल मुक़द्दस की जानिब मुँह करके नमाज़ अदा करते थे। रिवायात में आता है कि हिजरत के तक़रीबन सत्रह महीने बाद क़िबले की तब्दीली का हुक्म आया, तो पैग़ंबर-ए-इस्लाम और आपके असहाब ने अपना क़िबला बैतुल मुक़द्दस को तर्क करके क़ाबा क़रार दे दिया। उस वक़्त कुछ लोगों को यह शक हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि उन्होंने जो नमाज़ें बैतुल मुक़द्दस की तरफ़

रुख करके अदा की हैं, वे ज़ाया हो जाएँ। इस पर यह आयत नाज़िल हुई, लेकिन इस आयत का एक तौसी'ई मफ़हूम (extended sense) भी है। वह यह है कि एक इंसान, जो नेकी का अमल करता है और दीन के मामले में संजीदा है, अगर उससे किसी वजह से कोई ख़िलाफ़-ए-दीन अमल हो जाए, तो इससे घबराने की ज़रूरत नहीं है। अल्लाह तआला इंसान की नीयत को देखता है, वह इंसान के ज़ाहिर को नहीं देखता। ऐसे इंसान के अमल को अल्लाह तआला ज़ाया नहीं करेगा।

ज़ाहिरी अमल इंसान की अंदरून की एक ज़ाहिरी तस्वीर है, असल हक़ीक़त तक़्वा है। चुनाँचे अगर किसी वजह से ऐसे इंसान से किसी ग़लती का इर्तिकाब हो जाए, तो उसे ना-उम्मीदी का शिकार नहीं होना चाहिए, बल्कि अल्लाह से भरपूर उम्मीद रखनी चाहिए कि वह उसकी नेकी को बरबाद नहीं करेगा। इस हक़ीक़त को क़ुरआन की दूसरी आयत में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

قُلْ يَا عِبَادِيَ الَّذِينَ أَسْرَفُوا عَلَى أَنْفُسِهِمْ لا تَقْنَطُوا مِنْ رَحْمَةِ اللَّهِ إِنَّ اللَّهَ يَغْفِرُ الذُّنُوبَ جَمِيعاً إِنَّهُ هُوَ الْغَفُورُ الرَّحِيمُ.

"कहो कि ऐ मेरे बंदो, जिन्होंने अपनी जानों पर ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हों। बेशक अल्लाह तमाम गुनाहों को माफ़ कर देता है, वह बड़ा बख़्शने वाला, मेहरबान है।" (क़ुरआन, 39:53)

नरमी का सुलूक

एक वाक़या हदीस की मुख्तलिफ़ किताबों में आया है। इसका ख़ुलासा यह है कि एक मर्तबा रसूलुल्लाह सहाबा के साथ कहीं जा रहे थे, साथ में औरतें भी थीं। कुछ औरतों को एक ऊँट पर बिठाया गया था, जिसे

अंजशा नामी एक सहाबी हाँक रहे थे। उन्होंने रास्ते में जब ऊँट तेज़ चलाया, तो रसूलुल्लाह ने कहा—

ارْفُقْ يَا أَنْجَشَةُ، وَيْحَكَ بِالقَوَارِيرِ.

"ऐ अंजशा, अल्लाह तुम पर रहम करे, नरमी का मामला करो इन क़वारीर (शीशों) के साथ।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6209)

इस हदीस में क़वारीर का लफ़्ज़ तम्सील के तौर पर औरतों के बारे में आया है यानी औरतें शीशे की मानिंद हैं, उनके साथ नरमी का मामला करो। अगर तुमने सख़्ती का तरीक़ा इख़्तियार किया, तो वे टूट जाएँगी। ज़िंदगी में सख़्ती और नरमी दोनों की ज़रूरत होती है। इसी बात को फ़ारसी में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

درشتی و نرمی به ہم در به است۔

ख़ालिक़ ने मर्द को सख़्ती के औसाफ़ के साथ पैदा किया है और औरत को नरमी के औसाफ़ के साथ। जैसे गुलाब के दरख़्त का काँटा सख़्ती की मिसाल है और इसका फूल नरमी की। इनमें से कोई अफ़ज़ल या ग़ैर-अफ़ज़ल नहीं। ज़िंदगी में दोनों की ज़रूरत यकसाँ तौर पर होती है। दानिशमंद इंसान वह है, जो इस हक़ीक़त को समझे और नरमी व सख़्ती दोनों ज़िंदगी की तामीर के लिए इस्तेमाल करे।

इस हक़ीक़त को एक और आयत में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

وَأَنْزَلْنَا الْحَدِيدَ فِيهِ بَأْسٌ شَدِيدٌ وَمَنَافِعُ لِلنَّاسِ.

"और हमने लोहा उतारा, जिसमें बड़ी क़ुव्वत है और लोगों के लिए फ़ायदे हैं।" (क़ुरआन, 57:25)

इसका मतलब यह है कि कड़ी धात में भी फ़ायदा है और नरम धात में भी। यही मामला इंसानी मिज़ाज का है। दानिशमंद वह है, जो मिज़ाज के इस फ़र्क़ को जाने और हर सिफ़त को इसके सही मौक़े पर इस्तेमाल करे।

इस हदीस में नरमी की बात को औरत के हवाले से बयान किया गया है, लेकिन तौसी'ई मफ़हूम में यह बात पूरी इंसानियत के एतिबार से है। नरम मिज़ाजी अहले-ईमान की आम सिफ़त है (अल-फ़ुरक़ान, 25:63)। वह हर हाल में मतलूब है।

दानिशमंदाना तरीक़ा

सहाबी-ए-रसूल उमैर बिन हबीब अंसारी ने अपने बेटे को नसीहत करते हुए कहा—

مَنْ لَا يَرْضَى بِالْقَلِيلِ مِمَّا يَأْتِي بِهِ السَّفِيهُ يَرْضَى بِالْكَثِيرِ

"जो शख़्स नादान की तरफ़ से पेश आने वाले छोटे शर पर राज़ी न होगा, उसे नादान के बड़े शर पर राज़ी होना पड़ेगा।"

(अल-मोजम अल-औसत, अल-तबरानी, हदीस नंबर 2258)

सहाबी के इस क़ौल में इज्तिमाई ज़िंदगी की एक हिकमत को बताया गया है। इज्तिमाई ज़िंदगी कभी यकसाँ नहीं होती। इज्तिमाई ज़िंदगी में हमेशा मुख़्तलिफ़ क़िस्म के मसाइल पेश आते हैं। इस बुनियाद पर बार-बार ऐसा होता है कि एक शख़्स को दूसरे की तरफ़ से ऐसा तजुर्बा पेश आएगा, जो उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ होगा, ऐसे मौक़े पर सही तरीक़ा यह है कि ए'राज़ (avoid) किया जाए, न कि टकराव शुरू कर दिया जाए।

अगर आप ऐसे मौक़े पर टकराव का तरीक़ा इख़्तियार करें, तो वह हमेशा 'चेन रिएक्शन' का सबब बनेगा। नतीजा यह होगा कि आप हमेशा बाहिरी मसाइल में उलझे रहेंगे और कभी अपने मंसूबे के मुताबिक़ कारगर अमल शुरू न कर सकेंगे। दूसरों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने का मतलब यह है कि आदमी ने अपने आपको ख़ुद अपने काम में इस्तेमाल नहीं किया, बल्कि उसे दूसरों की मुख़ालिफ़त में ज़ाया कर दिया। इस मसले का वाहिद हल यह है कि सब्र-ओ-ए'राज़ का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए। दूसरे अल्फ़ाज़ में, 'अवॉइडेंस' का तरीक़ा। इस तरह के मामले में यही वाहिद तरीक़ा क़ाबिल-ए-अमल है, कोई दूसरा तरीक़ा इस मामले में काम करने वाला नहीं।

ए'राज़ बा-मक़सद इंसान की सोची-समझी हकीमाना रविश है। बा-मक़सद इंसान दूसरे की तरफ़ से पेश आने वाले ना-ख़ुशगवार तजुर्बे पर ए'राज़ का तरीक़ा इख़्तियार करता है, क्योंकि उसके सामने एक मुतय्यन मंज़िल होती है, जहाँ पहुँचना उसका सबसे बड़ी फ़िक्र होती है। इसलिए वह ए'राज़ का तरीक़ा इख़्तियार करके रास्ते के हर उलझाव से अपने आपको दूर रखता है। वह अपने वक़्त और अपनी एनर्जी दोनों को बचाता है, ताकि वह किसी रुकावट के बग़ैर अपनी मंज़िल तक पहुँच सके।

आख़िरत का मुआशरा

क़ुरआन में तख़्लीक़ के मंसूबे के बारे में बताया गया है—

الَّذِي خَلَقَ الْمَوْتَ وَالْحَيَاةَ لِيَبْلُوَكُمْ أَيُّكُمْ أَحْسَنُ عَمَلاً وَهُوَ الْعَزِيزُ الْغَفُورُ.

"जिसने मौत और ज़िंदगी को पैदा किया, ताकि वह तुमको जाँचे कि तुममें से कौन अच्छे अमल वाला है और वह ज़बरदस्त है, बख़्शने वाला है।" (क़ुरआन, 67:2)

अल्लाह रब्बुल आलमीन ने अपने मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़, इंसान की ज़िंदगी को दो हिस्सों में तक़सीम कर दिया है। एक, मौजूदा दुनिया की ज़िंदगी है, जिसमें इंसान आज जी रहा है। दूसरी ज़िंदगी आख़िरत की ज़िंदगी है। मौजूदा दुनिया बतौर नर्सरी वजूद में लाई गई है यानी वह दुनिया जहाँ अच्छे अमल करने वाले इंसानों को चुना जा रहा है (अल-मुल्क, 67:2)। जब ऐसे इंसानों के इंतिख़ाब का प्रोसेस मुकम्मल हो जाएगा, तो मौजूदा दुनिया ख़त्म कर दी जाएगी। इसकी जगह एक और दुनिया वजूद में लाई जाएगी यानी आख़िरत की दुनिया। आख़िरत की दुनिया असल-ए-मक़सूद है और वह अबदी दुनिया (eternal world) है। इस मतलूब दुनिया के लिए ऐसे इंसानों के इंतिख़ाब का अमल मौजूदा दुनिया में जारी है। जब मौजूदा इंसानी तारीख़ का ख़ात्मा करके दूसरी अबदी दुनिया बसा दी जाएगी यानी आख़िरत की दुनिया, तो इन इंसानों को उनके अमल के एतिबार से चार गिरोहों में तक़सीम किया जाएगा। इसका ज़िक्र क़ुरआन की सूरह अन-निसा में इन अल्फाज़ में किया गया है—

وَمَنْ يُطِعِ اللَّهَ وَالرَّسُولَ فَأُولئِكَ مَعَ الَّذِينَ
أَنْعَمَ اللَّهُ عَلَيْهِمْ مِنَ النَّبِيِّينَ وَالصِّدِّيقِينَ
وَالشُّهَداءِ وَالصَّالِحِينَ وَحَسُنَ أُولئِكَ رَفِيقاً.

"और जो अल्लाह और रसूल की इताअत करेगा, वह उन लोगों के साथ होगा, जिन पर अल्लाह ने इनाम किया यानी पैग़ंबर और सिद्दीक़ और शुहदा और सालेह। कैसी अच्छी है उनकी रिफ़ाक़त!" (क़ुरआन, 4:69)

क़ुरआन की इस आयत में चार ऐसे गिरोहों का ज़िक्र है, जो अच्छे अमल करने की वजह से अल्लाह के इनाम के मुस्तहिक़ क़रार पाएँगे। यह आयत, ऊपर ज़िक्र की गई आयत की तफ़्सीर है। वे चार गिरोह हैं—अंबिया, सिद्दीक़ीन, शोहदा और सालिहीन। यहाँ शोहदा से मुराद

जान देने वाले नहीं हैं, बल्कि लोगों के सामने अल्लाह के पैग़ाम को वाज़ेह तौर पर पेश करने वाले हैं।

बुढ़ापा आख़िरी मौक़ा

बुढ़ापे को आम तौर पर एक मुसीबत समझा जाता है, मगर हक़ीक़त यह है कि बुढ़ापा किसी इंसान के लिए एक ऐसी हक़ीक़त की याददिहानी है, जिसका एहसास इंसान को बुढ़ापे से पहले नहीं होता। अल्लाह रब्बुल आलमीन की नेमतें इंसान को हर लम्हा मिलती रहती हैं, मगर इंसान की एक कमज़ोरी है कि वह मिली हुई नेमतों को 'फ़ॉर ग्रांटेड' लेता रहता है। बुढ़ापा किसी इंसान की ज़िंदगी में इस भरम को तोड़ देता है। बुढ़ापा इंसान को मजबूर करता है कि वह मिली हुई नेमतों को अल्लाह रब्बुल आलमीन का यकतरफ़ा अतिया समझे और इस पर अल्लाह रब्बुल आलमीन का शुक्र अदा करे।

इंसान आम तौर पर अपनी जवानी में ग़फ़लत की ज़िंदगी गुज़ारता है। बुढ़ापा आदमी को इस क़ाबिल बनाता है कि वह आख़िरी तौर पर चौकन्ना हो जाए। वह अपनी ज़िंदगी के आख़िरी दिनों को शऊरी तौर पर मंसूबा-ए-तख़्लीक़ (creation plan) के मुताबिक़ गुज़ारे। बुढ़ापा किसी इंसान के लिए वैसा ही है, जैसा न्यूटन के लिए 'एप्पल शॉक' था।

बुढ़ापा इंसान को मजबूर करता है कि वह उन हक़ीक़तों को जान ले, जिन्हें वह अब तक नज़र-अंदाज़ किए हुए था। बुढ़ापा इंसान को आख़िरी तौर पर यह एहसास करवाता है कि वह इस दुनिया से जाने से पहले अपने आपको मुसबत (positive) सरगर्मियों में लगाए। वह ख़ुद को इससे बचाए कि ज़िंदगी के आख़िरी लम्हात को मुसबत सरगर्मियों में इस्तेमाल करने से चूक जाए, यहाँ तक कि वह इस दुनिया से चला

जाए। बुढ़ापा किसी इंसान के लिए उसकी ज़िंदगी का आख़िरी मौक़ा है। इसके बाद उसके लिए कोई दूसरा मौक़ा नहीं।

बुढ़ापा पूछकर नहीं आता और न ही दूर करने से वापस जाता है। बुढ़ापा किसी इंसान के लिए उसकी ज़िंदगी की आख़िरी दस्तक है। जो आदमी बुढ़ापे की दस्तक को न सुने, वह हमेशा के लिए एक महरूम इंसान बन जाएगा। बुढ़ापा आदमी के लिए ज़िंदगी का आख़िरी मौक़ा है— अपनी तौबा के लिए और दूसरों को ज़िंदगी का तजुर्बा देने के लिए।

बे-सब्री नहीं

मैंने अपनी पूरी ज़िंदगी मुताले में गुज़ारी है। मैंने जब इंसानी तारीख़ का मुताला किया, तो मुझे समझ में आया कि वही इंसान कामयाब हो सकता है, जो मुस्तक़िल मिजाज़ हो, लेकिन जिसके अंदर टिड्डे वाला मिजाज़ हो यानी जो मुस्तक़िल मिज़ाजी के साथ किसी एक चीज़ पर टिककर नहीं रहता हो, वह हर मैदान में नाकाम होता है। इसकी वजह यह है कि मुस्तक़िल मिज़ाजी से इंसान को कामयाबी मिलती है, क्योंकि फ़ितरी क़ानून के मुताबिक़, इस दुनिया में कामयाबी चंद लम्हों की मेहनत से हासिल नहीं होती, इसके लिए सब्र के साथ लगातार कोशिश करना पड़ती है। ब्रिटेन के साबिक़ वज़ीर-ए-आज़म विंस्टन चर्चिल (1874-1965) का एक क़ौल है— मुस्तक़िल कोशिश, न कि क़ुव्वत या अक़्ल, हमारे पोटेंशियल को एक्चुअल बनाने की चाबी है।

> “Continuous effort, not strength or intelligence, is the key to unlocking our potential.”

यह सिर्फ़ दुनियावी उमूर का मामला नहीं है, बल्कि दीनी उमूर में भी यही मुस्तक़िल कोशिश पसंदीदा है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से पूछा गया कि कौन-सा अमल अल्लाह को सबसे महबूब है (أَيُّ الْعَمَلِ أَحَبُّ إِلَى اللهِ؟)? आपने कहा कि जो मुसलसल किया जाए, अगरचे कम हो أَدْوَمُهُ وَإِنْ قَلّ (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 782)।

इसकी वजह यह है कि जब आप किसी चीज़ को पाने की कोशिश करते हैं, तो यह सिर्फ़ आपका मामला नहीं होता, बल्कि इसमें दूसरी चीज़ों को मैनेज करने का मामला भी शामिल हो जाता है, ख़्वाह वह दूसरे इंसानों का मामला हो या कोई और चीज़। अल्लाह का तरीक़ा यह है कि वह इन तमाम चीज़ों को मैनेज करते हुए इंसान की कोशिश का नतीजा ज़ाहिर करता है। इसलिए इंसान को उसकी कोशिश का नतीजा फ़ौरन नहीं मिल पाता, उसे मुसलसल कोशिश करना पड़ती है। उसे जल्दबाज़ी के बजाय दर्जा-ब-दर्जा के ज़रिये अपना सफ़र तय करना पड़ता है।

नतीजा-ख़ेज़ अमल

एक तालीम-याफ़्ता मुसलमान ने सवाल किया कि हिंदुस्तानी मुसलमानों के मसाइल का हल क्या है? मैंने कहा कि सब्र। उन्होंने कहा कि सब्र का क्या मतलब है? मैंने कहा कि सब्र का मतलब है— मसाइल को नज़र-अंदाज़ करके मौक़े को इस्तेमाल करना।

उन्होंने कहा कि मैं मानता हूँ कि सब्र का हुक्म क़ुरआन में है, मगर सब्र कोई मुतलक़ चीज़ नहीं। जब खुल्लम-खुल्ला इश्तिआल-अंगेज़ी की जाए। जब हम साफ़ तौर पर देखें कि मुसलमानों के ऊपर ज़्यादती

की जा रही है, तो उस वक़्त सब्र कैसे किया जाएगा? ऐसी हालत में सब्र करना तो बुज़दिली और शिकस्त-ख़ुर्दगी के हम-मअनी होगा।

मैंने कहा कि आपने सब्र का मेयार ग़लत क़ायम किया है। सब्र के इख़्तियार या तर्क का मेयार यह नहीं है कि सब्र करने में आपको बुज़दिली या शिकस्त-ख़ुर्दगी नज़र न आए, तो आप सब्र करें और जब सब्र का तरीक़ा आपको बुज़दिली और शिकस्त-ख़ुर्दगी दिखाई दे, तो आप सब्र को छोड़ दें। यह जज़्बातियत है, जबकि मेयार हमेशा उसूली बुनियाद पर तय किया जाता है। सब्र का हक़ीक़ी मेयार सिर्फ़ एक है और वह नतीजा है। सब्र का उसूल सिर्फ़ उस वक़्त तोड़ा जा सकता है, जबकि इसमें कोई मुसबत नतीजा मिलने वाला न हो, बसूरत-ए-दीगर सब्र की रविश पर क़ायम रहना ज़रूरी होगा, ख़्वाह बज़ाहिर वह बुज़दिली और शिकस्त-ख़ुर्दगी क्यों न दिखाई देता हो।

क़दीम मक्का में मुसलमानों के ख़िलाफ़ हर तरह की इश्तिआल-अंगेज़ी जारी थी। हर क़िस्म का ज़ुल्म उन पर किया जा रहा था। हज़रत उमर ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से कहा कि इन ज़ालिमों के ख़िलाफ़ जिहाद किया जाए। आपने फ़रमाया—

يَا عُمَرُ ، إِنَّا قَلِيلٌ.

"ऐ उमर, अभी हम थोड़े हैं।"

(अल-बिदाया व अल-निहाया, इब्न कसीर, जिल्द 3, सफ़्हा 230)

इससे मालूम हुआ कि मुसलमान जब कम हों और फ़रीक़-ए-मुख़ालिफ़ ज़्यादा हो, तो ज़ुल्म के बावजूद टकराव का तरीक़ा इख़्तियार नहीं किया जाएगा, क्योंकि ऐसी पहेल का कोई फ़ायदा नहीं। इस्लाम में सिर्फ़ उसी पहल की इजाज़त है, जो नतीजा-ख़ेज़ हो। जो क़दम बे-नतीजा होकर रह जाए या जिस क़दम का उल्टा अंजाम निकलने वाला हो, वह सुन्नत-ए-रसूल के ख़िलाफ़ है और जो अमल सुन्नत-ए-रसूल के ख़िलाफ़ हो, वह बिला-शुब्हा अल्लाह के यहाँ

ग़ैर-मक़बूल क़रार पाएगा। नतीजे को सामने रखकर अपना रवैया मुक़र्रर करना इस्लाम है और नतीजे से बेपरवाह होकर जोश व जज़्बे के तहत इक़्दाम करना नादानी।

बे-तहक़ीक़ ख़बर

एक मर्तबा मैं एक सफ़र में था। दौरान-ए-सफ़र एक अख़बारी नुमाइंदे ने मेरा इंटरव्यू लिया। इसमें अख़बारी नुमाइंदे ने एक सवाल यह किया कि आपके बारे में तरह-तरह के इल्ज़ाम लगाए जाते हैं, मसलन— आप आर०एस०एस० के आदमी हैं। इन इल्ज़ामात के बारे में आपका क्या जवाब है? मैंने कहा कि इस क़िस्म के इल्ज़ामात सिर्फ़ मुझसे ख़ास नहीं हैं। जब भी कोई आदमी काम करने के लिए उठता है, तो लोग उसे इसी तरह अपने इल्ज़ामात का शिकार बनाते है, मसलन— सर सय्यद, इक़बाल, मौलाना हुसैन अहमद मदनी, अबुल कलाम आज़ाद, मौलाना अली मियाँ वग़ैरह। इनमें से कोई भी शख़्स इस क़िस्म के इल्ज़ामात से बचा हुआ नहीं है, यहाँ तक कि तब्लीग़ी जमात, जो एक बे-ज़रर जमात है, उस पर भी बड़े-बड़े इल्ज़ामात लगाए गए, मसलन— वे सी०आई०ए० (CIA) के एजेंट हैं, वे मुसलमानों को अमल के मैदान से हटाने की साज़िश कर रहे हैं, वे मुसलमानों में ग़लत दीन फैला रहे हैं वग़ैरह।

इस क़िस्म की बात के बारे में सही रवैया यह है कि उन्हें हक़ाइक़ की बुनियाद पर जाँचकर देखा जाए। सिर्फ़ किसी के कहने की बुनियाद पर राय न क़ायम की जाए। इस उसूल को क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

يا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِنْ جاءَكُمْ فاسِقٌ بِنَبَإٍ فَتَبَيَّنُوا أَنْ تُصِيبُوا قَوْماً بِجَهالَةٍ فَتُصْبِحُوا عَلى مَا فَعَلْتُمْ نادِمِينَ.

"ऐ ईमान वालो, अगर कोई फ़ासिक़ तुम्हारे पास ख़बर लाए, तो तुम अच्छी तरह तहक़ीक़ कर लिया करो, कहीं ऐसा न हो कि तुम किसी गिरोह को नादानी से कोई नुक़सान पहुँचा दो, फिर तुमको अपने किए पर पछताना पड़े।" (क़ुरआन, 49:6)

इस आयत से मालूम होता है कि कोई आदमी दूसरे शख़्स के बारे में अगर ऐसी ख़बर दे, जिसमें उस शख़्स पर कोई इल्ज़ाम आता हो, तो ऐसी ख़बर को सिर्फ़ सुनकर मान लेना ईमानी एहतियात के सरासर ख़िलाफ़ है। सुनने वाले पर लाज़िम है कि वह ऐसी ख़बर की ज़रूरी तहक़ीक़ करे और जो राय क़ायम करे, ग़ैर-जानिबदाराना तहक़ीक़ के बाद करे, न कि तहक़ीक़ से पहले। यह सख़्त ग़ैर-ज़िम्मेदारी की बात है कि किसी आदमी के बारे में बे-तहक़ीक़ ख़बर पर कोई राय क़ायम की जाए या कोई कारवाई की जाए।

अमीर मुआविया का रोल

मुआविया बिन अबू सुफ़ियान रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के एक सहाबी हैं। वे हिजरत-ए-मदीना से तक़रीबन 15 बरस क़ब्ल मक्का में पैदा हुए। जब इस्लाम लाए, तो उनकी उम्र पच्चीस साल थी। वे वही के लिखने वालों में से थे। उनके बारे में रसूलुल्लाह की एक दुआइया रिवायत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

عَنْ عَبْدِ الرَّحْمَنِ بْنِ أَبِي عَمِيرَةَ عَنِ النَّبِيِّ صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ أَنَّهُ قَالَ لِمُعَاوِيَةَ:اَللَّهُمَّ اجْعَلْهُ هَادِيًا مَهْدِيًّا وَاهْدِ بِهِ.

अब्दुल रहमान बिन अबू अमीरा कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने मुआविया के बारे में कहा—

"ऐ अल्लाह, तू इसे हिदायत देने वाला बना और इसे हिदायत पर क़ायम रख और इसके ज़रिये से हिदायत दे।"

(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 3842)

मुताले से मालूम होता है कि इस्लाम की तारीख़ में अमीर मुआविया का एक अहम रोल है। वह अहम रोल क्या है? वह अहम रोल यह है कि उन्होंने इस्लाम की तारीख़ को दोबारा दौर-ए-जाहिलियत की तरफ़ जाने से बचा लिया यानी दौर-ए-जाहिलियत की तरह होने वाली आपसी ख़ाना-जंगी से उम्मत-ए-मुस्लिमा को बचाया।

अमीर मुआविया के मामले में मेरी राय यह है कि अमीर मुआविया ने 'प्रैक्टिकल विज़डम' इस्तेमाल करते हुए फ़ैसला किया। रसूलुल्लाह के बारे में क़ुरआन में आया है कि आपको किताब दी गई और हिकमत (2:129)। हिकमत से मुराद है— 'प्रैक्टिकल विज़डम'। मुआविया ने अपने ज़माने में यही तरीक़ा इख़्तियार किया। उन्होंने जो तरीक़ा इख़्तियार किया, वह बादशाही का तरीक़ा नहीं था। इल्मी की ज़बान में इस तरीक़े को डायनेस्टी (dynasty) कहा जाता है। उस ज़माने में यही तरीक़ा क़ाबिल-ए-अमल था। चुनाँचे उसके बाद मुस्लिम अहद में डायनेस्टी ही का तरीक़ा राइज रहा।

रसूलुल्लाह के बाद जहाँ भी मुसलमानों की हुकूमत क़ायम हुई, हर जगह यही तरीक़ा जारी रहा। इसकी वजह से मुस्लिम अहद में इस्तेहकाम (stability) आ गया। इसी सियासी इस्तेहकाम की बुनियाद पर बाद के ज़माने में इस्लाम के तमाम काम अंजाम पाए।

जदीद ज़ेहन और इस्लाम

जदीद ज़ेहन (modern mind) का एक मसला यह है कि उसे यह नज़र आता है कि इस्लाम का क़दीम मॉडल दौर-ए-जदीद के माहौल

से टकरा रहा है। इस बिना पर इस्लाम बज़ाहिर दौर-ए-जदीद के लिए ग़ैर-मौज़ूँ (misfit) हो गया है, मसलन— उनके ख़्याल के मुताबिक़, इस्लाम अपने क़ानून की हुकूमत क़ायम करना चाहता है, जबकि मौजूदा ज़माने की हुकूमतें डेमोक्रेसी के उसूल पर चलाई जाती हैं।

इसी तरह उनका यह ख़्याल है कि इस्लाम इज़हार-ए-ख़्याल की आज़ादी को तस्लीम नहीं करता है, जबकि जदीद ज़ेहन इज़हार-ए-ख़्याल की आज़ादी को बिला शर्त हक़ समझता है। इस्लाम में इज्तिमाई ज़िंदगी के लिए जो शरई क़वानीन हैं, उन्हें इस्लाम मुक़द्दस और बदलाव से दूर समझता है, जबकि मौजूदा ज़माने में किसी क़ानून को उस मअनी में मुक़द्दस नहीं समझा जाता। इस्लाम अपने मानने वालों को हुक्म देता है कि वे अपनी अलग शनाख़्त (identity) क़ायम करें, जबकि इस क़िस्म का नज़रिया जदीद दौर में एक अजनबी नज़रिये की हैसियत रखता है। इस्लाम में क़ौमियत को मज़हब पर मबनी क़रार दिया गया है, जबकि दौर-ए-जदीद में आम तौर पर मबनी-बर-वतन (nation based) क़ौमियत को तस्लीम कर लिया गया है वग़ैरह।

इस्लाम के बारे में इस क़िस्म के तमाम ख़्यालात एक ग़लतफ़हमी पर मबनी हैं और वह है— इस्लाम और मुसलमानों में फ़र्क़ न करना। वे तमाम चीज़ें, जिनकी सदाक़त पर मौजूदा ज़माने में शक किया जाता है, वे सब-की-सब मुस्लिम ज़ेहन की पैदावार हैं, वे इस्लाम की असल तालीम का हिस्सा नहीं हैं।

ये तमाम चीज़ें वे हैं, जिन्हें बाद के ज़माने में मुसलमानों ने बतौर ख़ुद इज़ाफ़ा करके इस्लाम का नाम दे दिया है। दूसरे अल्फ़ाज़ में, ये तमाम चीज़ें हाशिया-ए-किताब (footnotes) का हिस्सा हैं, न कि मतन-ए-किताब (text) का हिस्सा। मिसाल के तौर पर, शत्म-ए-रसूल (blasphemy) पर क़त्ल की सज़ा बाद को मुस्लिम फ़ुक़हा ने वाज़ेह किया, क़ुरआन-ओ-सुन्नत में इसका कोई वजूद नहीं है।

आलमी पैग़ाम-रसानी

मौजूदा ज़माने में कंप्यूटर के वजूद में आने के बाद सेमिनार और कॉन्फ्रेंस के लिए एक नया आलमी सिस्टम वजूद में आया है। इसे वेबिनार (webinar) कहा जाता है। कुछ मल्टी-नेशनल कंपनियाँ हैं, जो आपको वेबिनार के लिए प्लेटफॉर्म मुहैया करती हैं, मसलन—ज़ूम, गूगल मीट, माइक्रोसॉफ्ट टीम्स वग़ैरह। आप इन प्लेटफॉर्म में से किसी को सब्सक्राइब कीजिए। आपके लिए मुल्की सतह पर या आलमी सतह पर वेबिनार का इंतज़ाम हो जाएगा। आपके मुक़र्ररीन (speakers) को प्रोग्राम के लिए किसी दूसरी जगह जाने की ज़रूरत नहीं, वे अपने मुक़ाम पर बैठकर इस वेबिनार के ज़रिये सारी दुनिया की ऑडियंस को ख़िताब कर सकते हैं।

A webinar is a seminar or other presentation that takes place on the internet, allowing participants in different locations to see and hear the presenter, ask questions, and sometimes answer polls.

आई०टी० इंक़लाब से पहले ज़माने में यह होता था कि कोई सेमिनार किया जाए, तो शिरकत करने वाले मेहमानों को सफ़र का ख़र्च देकर और होटलों में ठहरने का इंतज़ाम करके बुलाया जाता था, फिर सेमिनार या कॉन्फ्रेंस मुनाक़िद की जाती थी। इसमें बहुत ज़्यादा पैसा ख़र्च होता था और सफ़र की मशक़्क़त, दूसरे टास्क की मशक़्क़त अलग थी; मगर वेबिनार का निज़ाम क़ायम हो जाने के बाद ये सारे झमेले ख़त्म हो चुके हैं। अब कॉन्फ्रेंस करने वाले को सिर्फ़ यह करना है कि वे मुक़र्ररीन को बुलावा दें कि फ़लाँ वक़्त वेबिनार होगा। उनको तारीख़, वक़्त और लिंक वग़ैरह दे दिया जाता है और आम लोगों को

सोशल मीडिया वग़ैरह के ज़रिये आगाह कर दिया जाता है। मुक़र्ररा वक़्त पर तमाम लोग मुतय्यन प्लेटफॉर्म पर इकट्ठा होते हैं और ऑनलाइन मीटिंग या सेमिनार वग़ैरह शुरू हो जाता है।

मिसाल के तौर पर सी०पी०एस० की उलमा टीम इंडिया के मुख़्तलिफ़ इलाक़ों से ताल्लुक़ रखती है, लेकिन वे लोग हर दिन सुबह के वक़्त सेमिनार की तर्ज़ पर आपस में इल्मी डिस्कशन करते हैं। यह डिस्कशन ऑनलाइन होता है। यह निज़ाम गोया इस बात का ऐलान है कि आलमी तौर पर ख़ुदाई पैग़ाम से आगाही के लिए इंफ्रास्ट्रक्चर क़ायम हो चुका है। अब उम्मत-ए-मुस्लिमा की ज़िम्मेदारी है कि वह इसका फ़ायेदा उठाकर सारी दुनिया में ख़ुदा के मिशन को पहुँचाए।

आज़ादी-ए-राय का माहौल

एक तरीक़ा वह है, जिसे शख़्सी मोनोपोली का तरीक़ा कहा जा सकता है। यह तरीक़ा बज़ाहिर ग़ैर-इख़्तालाफ़ी तरीक़ा होता है यानी ऐसा तरीक़ा, जिसमें मरकज़ी शख़्सियत की बात मानी जाए, इससे कोई इख़्तिलाफ़ न किया जाए। यह तरीक़ा बज़ाहिर बहुत अच्छा मालूम होता है, मगर इस तरीक़े में आज़ादी-ए-राय का ख़ात्मा हो जाता है। दूसरा तरीक़ा यह है कि बात को शख़्सियत के बजाय 'मेरिट' की सतह पर देखा जाए और इसे सही और ग़लत के मेयार से जाँचा जाए। इस तरीक़े में आज़ादी-ए-राय का माहौल बाक़ी रहता है। इस तरीक़े में वे लोग इकट्ठा होते हैं, जिन्होंने अपने ज़माने को समझा हो और इसे 'अवेल' किया हो। पहला तरीक़ा क़दीम पैटर्न है और दूसरा तरीक़ा जदीद (modern) पैटर्न।

दोनों तरीक़ों के अपने-अपने फ़ायदे हैं। पहले तरीक़े में बज़ाहिर यह फ़ायदा है कि वहाँ इख़्तिलाफ़ पैदा नहीं होता। यह तरीक़ा बज़ाहिर

अच्छा मालूम होता है, लेकिन इसका नुक़सान यह है कि वहाँ के अफ़राद में ज़ेहनी इर्तिक़ा (intellectual development) नहीं हो पाता, उनके अंदर फ़िक्री जमूद (intellectual stagnation) पैदा हो जाता है। वे नए-नए आइडियाज़ पर सोच नहीं पाते। वे 'क्रिएटिव थिंकिंग' से ख़ाली हो जाते हैं। हर आदमी जहाँ है, वहीं हमेशा के लिए ज़ेहनी तौर पर बाक़ी रहता है। दूसरे तरीक़े में बज़ाहिर इख़्तिलाफ़ की बुराई नज़र आती है, लेकिन इख़्तिलाफ़ को अगर राय का फ़र्क़ मान लिया जाए, तो इसकी बुराई ख़त्म हो जाएगी। हर आदमी अपनी-अपनी राय को लेकर सोचेगा। हर आदमी को यह मौक़ा रहेगा कि वह मुख़्तलिफ़ राय को उनकी मेरिट पर जाँचे।

आज़ादी-ए-राय के माहौल में ज़ेहनी इर्तिक़ा का मौक़ा बाक़ी रहता है, लेकिन जहाँ राय की आज़ादी का माहौल न हो, वहाँ ज़ेहनी जुमूद पैदा हो जाएगा। जो शख़्स ज़ेहनी तौर पर जहाँ पहले था, वहीं बाक़ी रहेगा। उसके ज़ेहनी इर्तिक़ा का सफ़र रुक जाएगा। इंसानों के तर्ज़-ए-फ़िक्र में इख़्तिलाफ़ कोई ग़ैर-मतलूब चीज़ नहीं, क्योंकि इस इख़्तिलाफ़ की बिना पर ऐसा होता है कि लोगों के दरमियान डिस्कशन और डायलॉग होता है और डिस्कशन और डायलॉग ज़ेहनी इर्तिक़ा का ज़रिया है। जहाँ डिस्कशन और डायलॉग न हो, वहाँ यक़ीनी तौर पर ज़ेहनी जुमूद पैदा हो जाएगा और ज़ेहनी जुमूद से ज़्यादा तबाहकुन और कोई चीज़ इंसान के लिए नहीं।

अम्न और इंसाफ़

एक तालीम-याफ़्ता कश्मीरी मुसलमान से मुलाक़ात हुई। मैंने कहा कि कश्मीर में सबसे ज़्यादा जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह अम्न है। उन्होंने कहा कि हम भी अम्न चाहते हैं, मगर अम्न वह है, जिसके साथ इंसाफ़

मिले। जिस अम्न के साथ इंसाफ़ शामिल न हो, वह तो सिर्फ़ ज़ालिमों के लिए मुफ़ीद है, न कि मज़लूमों के लिए।

कुछ लोग 'अम्न मा इंसाफ़' (peace with justice) की वकालत करते हैं। इन लोगों का कहना है कि 'सिर्फ़ अम्न' एक मनफ़ी अम्न (negative peace) है और 'अम्न मा इंसाफ़' मुसबत अम्न (positive peace)। यह बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी है, जिसमें तमाम दुनिया के मुस्लिम रहनुमा मुब्तला हैं। अम्न की तारीफ़ अदम-ए-जंग (absence of war) से की जाती है। यह बिलकुल सही तारीफ़ है। नतीजा-ख़ेज़ अम्न वह है, जो अम्न-बराए-अम्न हो। अम्न के क़ियाम का मतलब इंसाफ़ का निज़ाम क़ायम करना नहीं है। अम्न सिर्फ़ इसलिए होता है कि हर क़िस्म की तामीरी सरगर्मियों के लिए कारगर फ़िज़ा हासिल हो सके। यही अक़्ल के मुताबिक़ भी है और यही इस्लाम के मुताबिक़ भी।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने जब हुदैबिया का अम्न मुआहिदा किया, तो इसमें आपको सिर्फ़ अम्न मिला था, इंसाफ़ नहीं मिला था। अलबत्ता जब अम्न के ज़रिये मोतदिल हालात पैदा हुए, तो आपने इन हालात से पैदा होने वाले मौक़े को इस्तेमाल करके इंसाफ़ से भी अज़ीम कामयाबी हासिल कर ली यानी मक्का की फ़तह। इंसाफ़ कभी अम्न का जुज़ नहीं होता। इंसाफ़ हमेशा अम्न के बाद हासिल-शुदा मौक़े को इस्तेमाल करने से मिलता है, न कि बराह-ए-रास्त तौर पर ख़ुद अम्न के साथ।

इसमें कोई शक नहीं कि अमली एतिबार से अम्न तमाम मतलूब चीज़ों में सबसे बड़ा मतलूब है, इसलिए कि किसी भी मुसबत या तामीरी काम के लिए इंसानी आबादी में अम्न का माहौल इंतिहाई ज़रूरी है। अम्न के बग़ैर किसी भी क़िस्म की कोई तरक़्क़ी नहीं हो सकती। अम्न मोतदिल माहौल में फ़िक्र-ओ-अमल के मौक़े फ़राहम करता है। इससे लोगों के दरमियान मुसबत सरगर्मियाँ शुरू हो जाती

हैं। अम्न से समाज में तामीरी सरगर्मियों के मौक़े पैदा होते हैं। इसके बरअक्स मुतशद्दिदाना (violent) माहौल समाज में नफ़रत, मायूसी और ग़ैर-यक़ीनी सूरतेहाल की मनफ़ी फ़िज़ा क़ायम कर देता है। यही वजह है कि अम्न के साथ आप अबदी तौर पर रह सकते हैं, मगर तशद्दुद के माहौल में आप अबदी तौर पर नहीं रह सकते।

नया ज़माना, नई प्लानिंग

इस्लाम में अक़ीदा मुतलक़ (absolute) है, लेकिन मिनहाज (method) हमेशा क़ाबिल-ए-तब्दील (changeable) होता है, मसलन— तौहीद का ताल्लुक़ अक़ीदे से है। इसमें कभी कोई तब्दीली नहीं होगी, लेकिन सवारी का ताल्लुक़ मिनहाज से है। क़दीम ज़माने में हज का सफ़र ऊँट के ज़रिये होता था, अब ज़माने की तब्दीली की बिना पर हाजी लोग हवाई जहाज़ से सफ़र करते हैं वग़ैरह।

मौजूदा ज़माना ख़ास तौर पर बीसवीं सदी में इस्लाम को ग़ालिब करने या इस्लामी इंक़लाब के लिए बहुत ज़्यादा तहरीकें उठाई गईं, लेकिन सब-की-सब अपने निशाने के एतिबार से नाकाम साबित हुईं। इसका आम सबब यह था कि दुनिया में हर एतिबार से एक नया दौर आ चुका था, मगर मुस्लिम रहनुमा नई तब्दीलियों से मुकम्मल तौर पर बे-ख़बर रहे। इन रहनुमाओं का आम केस एक रहनुमा के अपने अल्फ़ाज़ के मुताबिक़ यह था—

दौड़ पीछे की तरफ़ ऐ गर्दिश-ए-अय्याम तू!

असल यह है कि फ़र्द या समाज की तरक़्क़ी का राज़ ज़मानी तब्दीली को समझने और इसके मुताबिक़ प्लानिंग करने में छिपा हुआ है। मौजूदा ज़माने में जदीद साइंस के ज़ुहूर के बाद पूरी सूरतेहाल

बिलकुल बदल गई। इस दौर में सबसे पहले करने का काम यह था कि नए ज़माने को दरयाफ़्त करके उसके मुताबिक़ ब-ज़रिये इज्तिहाद इस्लाम की ततबीक़-ए-नौ (reapplication) तलाश की जाए, मगर मुस्लिम रहनुमा ऐसा न कर सके। ये रहनुमा ऐसे तरीका के मुताबिक़ अपनी तहरीकें चलाते रहे, जो ज़मानी तब्दीली की बिना पर अब ना-क़ाबिल-ए-अमल (obsolete) हो चुके थे। इस बिना पर उनके मंसूबे भी अमलन ना-क़ाबिल-ए-ततबीक़ (inapplicable) हो गए। नतीजा यह हुआ कि इन तहरीकों ने मिल्ली ख़िदमात के नाम पर कुछ पुरशोर हंगामे तो ज़रूर जारी किए, लेकिन वे मिल्लत के लिए कोई नतीजा-ख़ेज़ तामीरी अमल अंजाम न दे सके।

मिसाल के तौर पर बीसवीं सदी के पहले हिस्से की ख़िलाफ़त तहरीक को लीजिए, जो मुस्लिम रहनुमाओं ने निहायत ज़ोर-ओ-शोर के साथ चलाई, लेकिन वह मुकम्मल तौर पर बे-नतीजा साबित हुई। इसका सबब यह है कि उस्मानी ख़िलाफ़त, जो तुर्की समेत 23 मुल्कों में क़ायम थी, उसका जवाज़ क़दीम तर्ज़ के एंपायर से हासिल हुआ था। उन्नीसवीं सदी में यह सियासी मॉडल अमलन मतरूक (obsolete) क़रार पा गया। अब उसकी जगह नया पॉलिटिकल मॉडल क़ायम हुआ, जो नेशन स्टेट (nation state) के तसव्वुर पर क़ायम था। अब सारी दुनिया में वतन पर मबनी क़ौमियत (nationalism) राइज है। ऐसे पॉलिटिकल माहौल में ख़िलाफ़त अमलन बे-ज़मीन हो चुकी है। यह वाक़या ख़ुद अरब मुल्कों में पेश आया, जो उस वक़्त ख़िलाफ़त-ए-उस्मानी का हिस्सा थे। 1924 में अतातुर्क ने सियासी ख़िलाफ़त को नहीं ख़त्म किया, बल्कि वह इससे पहले नए सियासी मॉडल की बिना पर अमलन ख़त्म हो चुकी थी।

ज़माने की इस तब्दीली का नतीजा यह होना चाहिए था कि मुस्लिम रहनुमा अपनी तहरीकों का नक़्शा नए अंदाज़ में बनाएँ, जो

ज़माने के तक़ाज़े के मुताबिक़ हो, मगर उन्होंने ऐसी तहरीकें चलाईं, जो ख़िलाफ़-ए-ज़माना हरकत (anachronism) का मिस्दाक़ थीं। यही वजह है कि मुस्लिम रहनुमाओं की तमाम-तर कोशिशों के बावजूद तहरीक-ए-ख़िलाफ़त अपना निशाना हासिल करने में मुकम्मल तौर पर नाकाम साबित हुई।

इसी तरह एक और मिसाल यह है कि मौजूदा ज़माने के कुछ रहनुमाओं ने अपने मक़सद के हुसूल के लिए पुर-तशद्दुद तरीक़े-कार (violent activism) को इख़्तियार किया और उन तहरीकों को बतौर ख़ुद जिहाद का नाम दे दिया। ये तहरीकें भी अपने निशाने को पाने में मुकम्मल तौर पर नाकाम हो गईं। इसका सबब यह था कि दो आलमी जंगों के तजुर्बे के बाद सारी दुनिया में वायलेंट एक्टिविज़्म (violent activism) नाक़ाबिल-ए-अमल क़रार पा चुका था। अब जो तरीक़े-कार जायज़ तरीक़ा की हैसियत से दुनिया में मक़बूल हुआ, वह मबनी-बर-अम्न तरीक़ा (peaceful activism) था।

यूनाइटेड नेशंस का आलमी निज़ाम पुर-अम्न तरीक़े-कार को जायज़ तरीक़े-कार (justified activism) की हैसियत देता था और इसके मुक़ाबले में पुर-तशद्दुद तरीक़े-कार को मुकम्मल तौर पर रद्द कर रहा था, लेकिन मुस्लिम रहनुमा ज़माने की इस तब्दीली से बे-ख़बर होकर क़दीम रिवायत के मुताबिक़ पुर-तशद्दुद तरीक़े-कार के मुताबिक़ अपनी तहरीकें चलाते रहे। इन्होंने इस मौजूदा दुनिया में जारी इस राज़ को नहीं समझा कि कोई भी तरीक़े-कार जिहाद का नाम देने से कामयाब या सही नहीं हो , असल में यह दुनिया से जुड़ा एक ऐसा मौज़ू है जो दुनिया के आम उसूलों (Universal Norms) के हिसाब से तय होता है, और उन्हीं उसूलों की बुनियाद पर उन्हें सही माना जाता है। ।

मौजूदा ज़माने में क़ौमियत (nationhood) का तसव्वुर एक सेक्युलर तसव्वुर है। क़ौमियत का ताय्युन सेक्युलर नज़रियात के तहत

मुतय्यन होता है, मगर मौजूदा ज़माने के मुस्लिम रहनुमाओं ने इस राज़ को नहीं समझा। उन्होंने ख़ुद-साख़्ता ज़ेहन के तहत क़ौमियत के तसव्वुर को इस्लामाइज़ करना शुरू कर दिया, जो कि मौजूदा ज़माने में पूरी तरह नाक़ाबिल-ए-अमल हो चुका था।

मौजूदा ज़माने में क़ौमियत का ताल्लुक़ वतन (homeland) से था, मगर मुस्लिम रहनुमाओं ने अपनी बे-ख़बरी के तहत मुसलमानों को यह बताया कि मुसलमान की क़ौमियत इस्लाम पर मबनी होनी चाहिए, न कि वतन पर। यह नज़रिया बिला-शुब्हा हक़ीक़त-पसंदी के ख़िलाफ़ था। इसका नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों के बारे में सारी दुनिया में यह तसव्वुर बन गया कि मुसलमान अपने मज़हब का वफ़ादार होता है, वह अपने वतन का वफ़ादार नहीं होता। इसका मज़ीद नुक़सान यह हुआ कि मुसलमान अमलन डबल स्टैंडर्ड के ख़तरे में मुब्तला हो गए। वे दुनिया के मुख़्तलिफ़ मुल्कों में जाते हैं और बज़ाहिर वे उस मुल्क की शहरियत इख़्तियार कर लेते है,। मगर उनका माइंड सेट वही बाक़ी रहता है, जो कि पहले था। इस तरह वे अपने को इस ख़तरे में डाल लेते हैं कि वे ख़ुद तो अपने को मोमिन समझें, लेकिन फ़रिश्तों के रिकॉर्ड में उन्हें डबल स्टैंडर्ड वाली शख़्सियत लिखा जाए।

तरक़्क़ी का ताल्लुक़ इससे नहीं है कि आप अपने मज़हब से बा-ख़बर हों, बल्कि तरक़्क़ी का ताल्लुक़ इससे है कि आप ज़माने के तक़ाज़े को समझें और इसके मुताबिक़ अपने दीन और दुनिया की मंसूबाबंदी करें। तब्दील-शुदा हालात को समझना और इसकी रिआयत करना मंसूबा-बंदी को कामयाब करता है। यह उस वक़्त मुमकिन है, जबकि इंसान खुले ज़ेहन के साथ मौजूदा हालात को समझने की कोशिश करे और बग़ैर किसी रिज़र्वेशन के इसके मुताबिक़

अपने अमल की प्लानिंग करे, लेकिन मौजूदा दौर के मुसलमान इस राज़ को न समझ सके कि यह दौर साइंसी दरियाफ़्तों की बिना पर क़दीम दौर से बिलकुल अलग हैसियत इख़्तियार कर चुका है। अब मुसलमानों को यह करना है कि वे जदीद तक़ाज़ों को समझें और इसके मुताबिक़ अपने अमल की मंसूबाबंदी करें। यही इस दुनिया में कामयाबी का राज़ है।

क़ौम की तरक़्क़ी

मौजूदा दुनिया की ज़िंदगी ख़ालिक़ की तरफ़ से दी हुई फ़ितरी आज़ादी पर क़ायम है। हर इंसान ख़ालिक़ की तरफ़ से आज़ाद पैदा किया जाता है और वह दुनिया में जो ज़िंदगी गुज़ारता है, वह सब आज़ादी के फ़ितरी उसूल पर मबनी होती है। यहाँ हर इंसान को कामिल आज़ादी दी गई है, वह चाहे भलाई करने वाला बनकर रहे या फ़सादी बनकर रहे। आज़ादी के ग़लत इस्तेमाल की बिना पर दुनिया में कभी मेयारी हालात नहीं हो सकते। हमेशा ऐसे वाक़यात पेश आते रहेंगे, जो कुछ लोगों के लिए ना-ख़ुशगवार साबित हों और कुछ लोगों के लिए ऐसे साबित हों, जिन्हें वे ज़ुल्म कहकर 'शिकायत कल्चर' में मुबतला हो जाएँ, मगर यह सिर्फ़ इंसान की आज़ादी की बात नहीं है, बल्कि यह इंसान की तरक़्क़ी के लिए ख़ालिक़ का मुक़र्रर-कर्दा कोर्स है। इन्हीं वाक़यात की बिना पर दुनिया में जद्दोजहद और चैलेंज का माहौल क़ायम होता है। इस माहौल की बिना पर इंसान की सलाहियतें बेदार होती हैं। इंसान के ज़ेहन की खिड़कियाँ खुलती हैं। इन ग़ैर-मामूली हालात में इंसान ऐसे कारनामे अंजाम देता है, जिन्हें वह मामूल के हालात में अंजाम नहीं दे सकता था।

यह ख़ालिक़ की मंसूबा-बंदी (planning) का मामला है। यह सब जो होता है, वह ख़ुद ख़ालिक़ के बनाए हुए निज़ाम की बिना पर होता है, न कि किसी के ज़ुल्म की बिना पर। इसीलिए ऐसे वाक़यात हर एक के साथ पेश आते हैं। हत्ता के पैग़ंबरों और उनके साथियों के साथ भी।

इस तरह के वाक़यात को क़ुरआन में 'मुसीबत' कहा गया है (2:156)। मज़कूरा आयत के मुताबिक़, ना-ख़ुशगवार वाक़यात के मुक़ाबले में फ़ितरी रिस्पांस यह है कि लोग इस पर सब्र करते हुए नए-नए रास्ते तलाश करें। वे नए-नए वाक़ये खोजकर उन्हें अवेल करने की मंसूबा-बंदी करें। ऐसे वाक़यात इंसान की तरक़्क़ी के लिए होते हैं, न कि उनकी दुश्मनी के लिए। किसी मुफ़क्किर ने दुरुस्त तौर पर कहा है कि ये ज़िंदगी की मुश्किलें हैं, जो इंसान को इंसान बनाती हैं।

It is not ease, but effort, not facility, but difficulty that makes men. (Samuel Smiles)

क़सूर अपना निकल आया

नौजवानी की उम्र में मैंने एक उर्दू माहनामा में एक मज़मून पढ़ा था। इसका उनवान था— क़सूर अपना निकल आया। यह उनवान मारूफ़ उर्दू शायर मोमिन ख़ान मोमिन (1800-1852) के एक शेर से लिया गया था, जिसका पूरा मिसरा इस तरह है—

मैं इल्ज़ाम उसको देता था, क़सूर अपना निकल आया।

जहाँ तक मुझे याद है कि इसमें मज़मून-निगार ने बताया था कि इंसान अपने मिज़ाज के एतिबार से हमेशा दूसरों को इल्ज़ाम देता है, लेकिन ग़ौर किया जाए, तो मालूम होगा कि इंसान को जो तकलीफ़ या नुक़सान पहुँचता है, वह कहीं-न-कहीं ख़ुद अपनी ग़लती का नतीजा होता है। इंसान यह करता है कि वाक़यात की तर्तीब ऐसे अंदाज़ से

करता है कि किसी-न-किसी तरह ग़लती दूसरे की साबित हो जाए और वह आदमी ख़ुद अपनी ग़लती से बचा रहे।

सामाजिक ज़िंदगी में कोई वाक़या अकेला इंसान अंजाम नहीं दे पाता, बल्कि हर वाक़या मुख़्तलिफ़ अस्बाब का मजमूई नतीजा होता है। इंसान यह करता है कि अस्बाब की मुवाफ़िक़ कड़ियों को लेता है और ज़ाहिर तौर पर अपने ख़िलाफ़ नज़र आने वाली कड़ियों को अलग कर देता है। वह वाक़ये को इस तरह तर्तीब देता है कि नतीजा अपने हस्ब-ए-हाल दिखाई देने लगे। यह ग़लती अफ़राद भी करते हैं और कौमें भी। यही सबसे बड़ी वजह है, जिसकी बिना पर ग़लती की इस्लाह नहीं होती। इसकी वजह से सामाजिक ज़िंदगी में हमेशा शिकायत और टकराव के हालात बाक़ी रहते हैं। ग़लती की इस्लाह का आग़ाज़ अपने आपसे कीजिए और फिर हर मसला इस तरह हल हो जाएगा, जैसे कि वह था ही नहीं।

अपनी नौजवानी के ज़माने में मैं सफ़र किया करता था। मैं देखता था कि हर आदमी दूसरों की शिकायत कर रहा है, हर आदमी किसी-न-किसी के ज़ुल्म को बयान कर रहा है। मैं सोचता था कि जब हर आदमी मज़लूम है, तो वह शख़्स कहाँ है, जो ज़ालिम का रोल अदा कर रहा है। बहुत दिनों के बाद मैंने दरयाफ़्त किया कि असल बात यह है कि हर आदमी अपनी ग़लती को दूसरे के ऊपर डाल रहा है। कोई शख़्स ख़ुद अपनी ग़लती का एतिराफ़ नहीं करता। यही तमाम मसाइल का सबब है। इस तजुर्बे के बाद मेरा यह मिज़ाज बन गया कि मैं कभी किसी दूसरे को इल्ज़ाम ही नहीं देता, हमेशा हर ग़लती का इल्ज़ाम अपने आप पर देता हूँ, यहाँ तक कि ऐसी ग़लती भी, जो बज़ाहिर मेरी नहीं होती, क्योंकि ग़लती का इल्ज़ाम दूसरों को देना मुझे ग़ैर-फ़ितरी काम मालूम होता है।

क्वालिटी की अहमियत

फ़ारसी ज़बान का एक ज़रब-उल-मिस्ल है—

जो शमशीर-ज़नी करता है, उसी का सिक्का चलता है।
हर के शमशीर ज़नद, सिक्का ब-नामश ख़्वानंद।

यह मिसाल क़दीम ज़माने की मिसाल है, जबकि दुनिया में फ़ैसले की बुनियाद जंग हुआ करती थी, मगर अब साइंस का ज़माना है। अब दुनिया में सबसे ज़्यादा अहमियत आला क्वालिटी (quality) की हो गई है। अब उन्हीं लोगों की अहमियत है, जिनके पास दूसरों को देने के लिए आला क्वालिटी का प्रोडक्ट हो— क्वालिटी एजुकेशन, क्वालिटी इंडस्ट्री, क्वालिटी इलाज, क्वालिटी मैनेजमेंट, क्वालिटी सप्लाई, क्वालिटी बिहेवियर वग़ैरह। मौजूदा ज़माने में आला क्वालिटी की अहमियत इतनी ज़्यादा है कि आप ख़्वाह जिस शोबे में हों, अगर आप आला क्वालिटी का सबूत दें, तो यक़ीनी तौर पर आप कामयाब रहेंगे।

मौजूदा ज़माने में आपको हुक़ूक़ तलबी की मुहिम चलाने की ज़रूरत नहीं। आपको न ज़ुल्म और साज़िश पर एहतिजाज करना है और न राइट एक्टिविज़्म की मुहिम चलानी है। आज की दुनिया एक खुला बाज़ार है। आप किसी भी शोबे में लोगों को आला क्वालिटी का रिज़ल्ट देना शुरू कर दें, तो आपकी कामयाबी इतनी ज़्यादा यक़ीनी हो जाएगी कि जिसे कोई चैलेंज न कर सके। मुझे एक शख़्स का क़िस्सा मालूम है, वह यूपी के एक गाँव में पैदा हुआ। फिर वह घर के हालात से तंग आकर बंबई चला गया। बंबई में उसने मामूली मज़दूर की हैसियत से घरों की पेंटिंग का काम शुरू किया। धीरे-धीरे उसका काम इतना ज़्यादा बढ़ा कि पूरे बंबई में फैल गया। उसकी कामयाबी का राज़ सिर्फ़ एक था और वह है आला पेंटिंग।

मौजूदा ज़माने में आला क्वालिटी कामयाबी का वाहिद राज़ है। नेल कटर (nail cutter) से लेकर कार तक, हर चीज़ में कामयाबी का राज़ यही है कि आप लोगों को आला क्वालिटी का प्रोडक्ट दें, मसलन— आपकी डीलिंग आला क्वालिटी की डीलिंग हो। आपका किरदार हर मामले में क़ाबिल-ए-पेशीनगोई किरदार (predictable character) हो।

लफ़्ज़ और मअनी

क़दीम अरब में बहुत-से बुत थे। एक बड़े बुत का नाम 'मनात' था। कुछ लोगों का कहना है कि अरब का 'मनात' और हिंदुस्तान का 'सोमनात' दोनों एक ही देवता के दो नाम हैं। हालाँकि यह नाम सुनने में मिलते जुलते है लेकिन इसके सिवा इस नज़रिये के हक़ में कोई तारीख़ी दलील मौजूद नहीं है।

इसी तरह बाज़ अरब सय्याह जब हिंदुस्तान आए और उन्होंने यहाँ 'ब्रह्मा' का लफ़्ज़ सुना, तो उन्होंने यह ख़्याल क़ायम कर लिया कि ब्रह्मा और इब्राहीम दोनों की असल एक ही है और हिंदुस्तान के ब्राह्मण 'इब्राहीम' की औलाद हैं। अल्लामा शहरिस्तानी ने इस मसले पर लिखा है कि यह महज़ एक ख़्याली बात है। इसके हक़ में तारीख़ी शवाहिद मौजूद नहीं (अल-मिलल व अन-निहल, शहरिस्तानी, जिल्द 3, सफ़्हा 95)।

हक़ीक़त यह है कि इस क़िस्म की बातों का ताल्लुक़ इल्म से या इल्मी इस्तिदलाल से नहीं। यह शायरी की इस सनफ़ को तारीख़ में इस्तेमाल करने की कोशिश है, जिसे 'मुनासबत-ए-लफ़्ज़ी' कहा जाता है।

मुनासबत-ए-लफ़्ज़ी का यह तरीक़ा सिर्फ़ लतीफ़ा-गो लोगों के यहाँ राइज नहीं। बहुत-से लोग हक़ीक़ी मामलात में भी इस तरीक़े को इख़्तियार किए हुए हैं। कोई शख़्स एक मज़हबी नज़रिया गढ़ता है और उसके हक़ में इस क़िस्म की लफ़्ज़ी दलील देकर यह समझता है कि उसने अपनी बात को आख़िरी तौर पर साबित कर दिया है। कोई शख़्स एक सियासी प्रोग्राम बनाता है और उस पर पूरी एक क़ौम को दौड़ा देता है। हालाँकि इस सियासी प्रोग्राम के हक़ में एक लफ़्ज़ी नुक्ते के सिवा कोई हक़ीक़ी दलील मौजूद नहीं होती।

अल्फ़ाज़ के मजमूए से मानवी हक़ाइक़ बरामद नहीं हो सकता। इसी तरह इस क़िस्म की तहरीकों और इस क़िस्म के हंगामों का कोई हक़ीक़ी नतीजा नहीं निकल सकता और न ही अब तक इनका कोई नतीजा निकला है। यह दुनिया हक़ाइक़ की दुनिया है। आदमी को चाहिए कि वह लफ़्ज़ी नुक्तों और मानवी हक़ीक़तों में फ़र्क़ करे। वह लफ़्ज़ी नुक्तों की बुनियाद पर कोई प्रोग्राम न बनाए, बल्कि हक़ाइक़ की बुनियाद पर ग़ौर-ओ-फ़िक्र के बाद अपना प्रोग्राम तर्तीब दे। बा-मक़सद कलाम वह है, जो पर हक़ीक़त पर मबनी हो, न कि ख़ूबसूरती पर। नतीजा-ख़ेज़ अमल वह है, जो हक़ाइक़ की बुनियाद पर अंजाम दिया जाए, न कि कल्पना (wishfull thinking) की बिना पर।

ज़मीन अपने ख़ात्मे की तरफ़

इंडिया के मारूफ़ अंग्रेज़ी रोज़नामा 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' (17 जून, 2023) नई दिल्ली एडीशन के 'टाइम्स ग्लोबल' सफ़हा पर एक न्यूज़ का 'उनवान यह था—

Heatwaves, wildfires hit globe; Asia, Europe, US sizzle at 40°C+.

हीटवेव और जंगल की आग ने दुनिया को अपनी लपेट में ले लिया।

इसके तहत जो ख़बर दी गई थी, वह एक इंसान को संजीदा ग़ौर-ओ-फ़िक्र का पैग़ाम देती है। ख़बर के मुताबिक़, एशिया, यूरोप और अमेरिका में दर्जा-ए-हरारत 40 डिग्री सेंटीग्रेड रिकॉर्ड किया गया है। इतवार के रोज़ शदीद गर्मी ने तीन बर्र-ए-आज़म— एशिया, यूरोप और अमेरिका— को अपनी लपेट में ले लिया। जंगली आग (wildfires) के बढ़ते वाक़यात और इंतिहाई शिद्दत के दर्जा-ए-हरारत इस संगीन ख़तरे की तरफ़ इशारा कर रहे हैं कि ग्लोबल वार्मिंग में दिन-ब-दिन इज़ाफ़ा होता जा रहा है। माहिरीन-ए-मौसमियात (meteorologists) की जानिब से मुस्तक़बिल के लिए इंतिहाई शदीद गर्मी की पेशीनगोई की जा रही है।

चीन ने दर्जा-ए-हरारत के हवाले से मुतद्दिद (many) अलर्ट जारी किए हैं, जिनमें शिनजियांग के सहराई इलाक़े में दर्जा-ए-हरारत 40 से 45 डिग्री सेंटीग्रेड और जुनूबी ग्वांगशी ख़ित्ते में 39 डिग्री सेल्सियस रहने की वार्निंग दी गई है। अमेरिका की नेशनल वेदर सर्विस ने बताया है कि कैलिफ़ोर्निया से टेक्सास तक शदीद गर्मी और हीटवेव अपने उरूज पर पहुँच सकती है। कैलिफ़ोर्निया की डेथ वैली सय्यारा-ए-ज़मीन के गर्मतरीन मुक़ामात में से एक है। माहिरीन-ए-मौसमियात के अंदाज़े के मुताबिक़, यहाँ भी दर्जा-ए-हरारत मुमकिना तौर पर 54 डिग्री सेंटीग्रेड से तजावुज़ कर जाएगा। जुनूबी कैलीफोर्निया के कई जंगलों में लगी आग से निपटा जा रहा है।

कनाडा में इस साल जंगल की आग ने एक करोड़ हेक्टेयर रक़बे को जला दिया है। इटली के बारे में अंदाज़ा यह है कि दर्जा-ए-हरारत 43 डिग्री सेंटीग्रेड या इससे ज़्यादा होगा। इस वजह से वहाँ की हेल्थ मिनिस्टर ने 16 शहरों के लिए रेड अलर्ट जारी किया है। यूनान (ग्रीस) में वाक़े तारीख़ी क़िला एक्रोपोलिस (Acropolis of Athens) सय्याहों के लिए इंतिहाई पुर-कशिश हैसियत रखता है। जुलाई, 2023 में गर्मी की ज़्यादती की वजह से यूनानी हुकूमत ने कई दिनों तक इसे बंद रखा।

इसी क़िस्म के नाक़ाबिल-ए-बर्दाश्त, इंतिहाई शदीद गर्मी के तजुर्बे से 2024 में बर्र-ए-सग़ीर हिंद-ओ-पाक और दीगर ख़ित्ते के लोग भी गुज़र रहे हैं। इंडिया टुडे की रिपोर्ट (30 मई, 2024) के मुताबिक़, मई, 2024 में नई दिल्ली में साल का गर्मतरीन दिन रिकॉर्ड किया गया था यानी 52 डिग्री सेल्सियस। इंडिया के 37 शहरों का दर्जा-ए-हरारत (तापमान) 45 डिग्री सेल्सियस से ज़्यादा हो चुका है। न्यूज़ एजेंसी एसोसिएटेड प्रेस (AP) की रिपोर्ट (24 मई, 2024) के मुताबिक़, पाकिस्तान के मोहनजोदड़ो इलाक़े में मई के महीने में तापमान 49 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच गया था और जून के महीने में 55 डिग्री सेल्सियस दर्जा-ए-हरारत पहुँचने का इमकान है। दर्जा-ए-हरारत की ज़्यादती की बिना पर सय्यारा-ए-ज़मीन पर इंसान का रहना दिन-ब-दिन मुश्किल होता जा रहा है। अगर ग़ौर किया जाए, तो ग्लोबल वॉर्मिंग का ज़ाहिरा धीरे-धीरे ग्लोबल बॉइलिंग का ज़ाहिरा बनता जा रहा है। यूनाइटेड नेशंस के सेक्रेटरी जनरल एंटोनियो गुटेरेस ने पर्यावरण पर एक कांफ्रेंस में तक़रीर करते हुए कहा था कि ग्लोबल वॉर्मिंग का ज़माना ख़त्म हो चुका है, अब ग्लोबल बॉइलिंग का समय आ गया है—

> "The era of 'global warming' has ended, and the era of 'global boiling' has arrived. (https://rb.gy/wfm2vq)."

जब मैंने इन वहशत-नाक ख़बरों को पढ़ा, तो मुझे क़ुरआन की ये दो आयतें याद आईं—

> "जो कुछ ज़मीन पर है, उसे हमने ज़मीन की रौनक बनाया है, ताकि हम लोगों को जाँचें कि उनमें कौन अच्छा अमल करने वाला है और हम ज़मीन की तमाम चीज़ों को एक बंजर मैदान बना देंगे।" (क़ुरआन, 18:7-8)

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब इस आयत के तहत लिखते हैं—

"ज़मीन की दिल-फ़रेबियाँ इंतिहाई वक़्ती हैं। वे इम्तिहान की एक मुक़र्रर मुद्दत तक हैं। इसके बाद ज़मीन की यह हैसियत ख़त्म कर दी जाएगी, यहाँ तक कि वह रेगिस्तान की तरह बस एक ख़ुश्क मैदान होकर रह जाएगी।"

(तज़्कीरुल क़ुरआन, सफ़्हा 773)

मौसमियाती तब्दीली और ग्लोबल वार्मिंग के पस-ए-मंज़र में यह कहना दुरुस्त होगा कि अब आख़िरी वक़्त आ गया है कि इंसान मक़सद-ए-हयात के ताल्लुक़ से अपनी सोच को बदले, क्योंकि मौसमियाती तब्दीली को बदलना इंसान के बस में नहीं है, इंसान के बस में यह है कि वह ज़मीन पर ज़िंदगी गुज़ारने के अपने नुक्ता-ए-नज़र (point of view) को तब्दील करे यानी यह कि सय्यारा-ए-ज़मीन पर मौजूद सामान-ए-हयात एंटरटेनमेंट के लिए नहीं हैं, बल्कि वह ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़ अगली ज़िंदगी की तैयारी का मुक़ाम है। ग्लोबल वार्मिंग गोया ख़ामोश ज़बान में ख़ुदाई ऐलान है कि इंसान के ताल्लुक़ से ज़मीन का रोल धीरे-धीरे अपने ख़ात्मे की तरफ़ जा रहा है। ऐसी सूरत में यह दानिशमंदी नहीं है कि इंसान अल्लाह रब्बुल आलमीन और उसके क्रिएशन प्लान से ग़ाफ़िल होकर ज़िंदगी गुज़ारे।

—डॉ. फ़रीदा ख़ानम, नई दिल्ली

आइडियोलॉजी, न कि तलवार

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने जब मक्का में अल्लाह के पैग़ाम को पहुँचाने का काम शुरू किया, तो क़ुरैश के लोगों ने मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से आपको रोकने की कोशिश की। उनमें एक वाक़या वह है, जो

सीरत की किताबों में इस तरह बयान किया गया है। अब्दुल्लाह बिन अब्बास रिवायत करते हैं कि एक बार क़ुरैश के सरदार अबू तालिब के यहाँ जमा हुए। अबू तालिब के ज़रिये उन लोगों ने रसूलुल्लाह से पूछा कि आख़िर आप हमसे क्या चाहते हैं, तो आपने कहा—

كَلِمَةٌ وَاحِدَةٌ تُعْطُونِيهَا تَمْلِكُونَ بِهَا
الْعَرَبَ، وَتَدِينُ لَكُمْ بِهَا الْعَجَمُ.

"मैं सिर्फ़ एक कलिमा का मुतालिबा करता हूँ। अगर तुम उसे मान लो, तो तुम सारे अरब के मालिक बन जाओगे और अजम तुम्हारे मती हो जाएँगे।"

(सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 1, सफ़्हा 417)

बाज़ लोगों ने रसूलुल्लाह के इस क़ौल का मतलब इस्लामी हुकूमत का क़ियाम निकाला है। हालाँकि इस हदीस का सियासत और हुकूमत से कोई ताल्लुक़ नहीं। इस हदीस में कलिमे की बात कही गई है, न कि हुकूमत की। यहाँ कलिमे का मतलब वही है, जिसे आजकल की ज़बान में आइडियोलॉजी (ideology) कहा जाता है। इंसानी तारीख़ का मुताला बताता है कि फ़ौजी ताक़त के मुक़ाबले में नज़रिये की ताक़त ज़्यादा बड़ी होती है। इस्लाम की तारीख़ इस हक़ीक़त की एक मुमताज़ मिसाल है। इस्लाम को पाएदार कामयाबी हमेशा आइडियोलॉजी की बुनियाद पर हासिल हुई है, न कि तलवार या फ़ौजी ताक़त की बुनियाद पर।

मिसाल के तौर पर, मदीना को इस्लाम की तारीख़ में मरकज़ी मुक़ाम हासिल है। मदीना के इस्लाम का मरकज़ बनने की वजह इस्लाम की आइडियोलॉजी है। मदीना के अंसार जब रसूलुल्लाह से मिले और आपके पैग़ाम को सुना, तो उन्हें आपकी बात पसंद आ गई। चुनाँचे वे लोग आपके सच्चे साथी बन गए। इस तरह मक्का के बजाय मदीना

इस्लामी मिशन का मरकज़ क़रार पाया और सारी दुनिया में इस्लाम का पैग़ाम मदीना के ज़रिये पहुँचा।

इसके बाद यह हुआ कि जब आप मदीना आ गए, तो मक्का के लोगों ने आपके ख़िलाफ़ जंग का एक सिलसिला क़ायम कर दिया, मसलन— बद्र, उहद और ख़ंदक़ वग़ैरह। रसूलुल्लाह ने इस जंगी सिलसिले को रोकने के लिए हुदैबिया के मुक़ाम पर मुशरिकीन-ए-क़ुरैश से एक तरफ़ा तौर पर झुककर दस साला ना-जंग-ए-मुआहिदा किया था। इस्लामी तारीख़ में इस मुआहिदे को सुलह-ए-हुदैबिया के नाम से जाना जाता है। इस सुलह के दो साल बाद बग़ैर किसी जंग के मक्का पर फ़तह हासिल हुई। इस फ़तह की जड़ में इस्लाम की आइडियोलॉजी थी। इब्न शिहाब ज़ुहरी ताबई के मुताबिक़, सुलह-ए-हुदैबिया से पहले आपस की लड़ाई की वजह से मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम एक-दूसरे से मिल नहीं सकते थे। अब जब अम्न क़ायम हुआ, मुनाफ़रत और कशीदगी (hate and tension) दूर हुई, तो आपस में तबादला-ए-ख़्याल होने लगा। इस तरह लोगों को इस्लाम को समझने का मौक़ा मिला, जिसका असर यह हुआ कि सुलह-ए-हुदैबिया के बाद दो सालों में इतनी बड़ी तादाद में लोगों ने इस्लाम क़ुबूल किया कि शुरुआत से लेकर उस वक़्त तक इतने मुसलमान नहीं हुए थे।

(الْتَقَوْا فَتَفَاوَضُوا فِي الْحَدِيثِ وَالْمُنَازَعَةِ، فَلَمْ يُكَلِّمْ أَحَدٌ بِالْإِسْلَامِ يَعْقِلُ شَيْئًا إِلَّا دَخَلَ فِيهِ، وَلَقَدْ دَخَلَ فِي تِينِكَ السَّنَتَيْنِ مِثْلُ مَنْ كَانَ فِي الْإِسْلَامِ قَبْلَ ذَلِكَ أَوْ أَكْثَرَ.)

(सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 2, सफ़्हा 322)

इस क़िस्म का एक अज़ीम वाक़या तेरहवीं सदी ईस्वी में पेश आया। तातारी क़बाइल के हमले ने अब्बासी सल्तनत को मग़लूब कर लिया था। यह ग़लबा इतना शदीद था कि मुसलमानों की फ़ौजी ताक़त

उसके मुक़ाबले में बे-असर साबित हुई। मुअर्रिख़ (historian) इब्न-ए-असीर ने उस ज़माने के मुसलमानों की उमूमी सोच की तर्जुमानी इन अल्फ़ाज़ में की है—

"अगर कोई यह बयान करे कि तातारियों ने शिकस्त खाई और क़ैद कर लिये गए, तो उसकी बात पर यक़ीन न करना और अगर कोई तुमसे यह बयान करे कि तातारियों ने दूसरों को क़त्ल कर दिया है, तो यक़ीन कर लेना।"

مَنْ حَدَّثَكُمْ أَنَّ التَّتَرَ انْهَزَمُوا وَأُسِرُوا فَلَا تُصَدِّقُوهُوَإِذَا حُدِّثْتُمْ أَنَّهُمْ قَتَلُوا فَصَدِّقُوهُ.

(अल-कामिल फ़ी अत-तारीख़, जिल्द 10, सफ़हा 353)

ऐसे नाज़ुक मौक़े पर इस्लाम की नज़रियाती ताक़त उभरी और सिर्फ़ निस्फ़ सदी के अंदर यह वाक़या पेश आया कि तातारी क़बाइल की अकसरियत ने इस्लाम क़ुबूल कर लिया। इस्लाम के दुश्मन इस्लाम के दोस्त बन गए। इस्लाम की इस नज़रियाती ताक़त को फ़िलिप हिट्टी (Philip K. Hitti) ने इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है—

"मुसलमानों के मज़हब ने वहाँ फ़तह हासिल कर ली, जहाँ उनके हथियार नाकाम हो चुके थे।"

"The religion of Muslims has conquered, where their arms had failed."

(History of the Arabs, 1970, p. 488)

हक़ीक़त यह है कि आइडियोलॉजी इंसान के दिलों को जीत लेती है और जब इंसान का दिल जीत लिया जाए, तो कोई और चीज़ उसे जीतने के लिए बाक़ी नहीं रहती।

मुताला-ए-हदीस

शरह मिश्कात अल-मसाबीह (हदीस नंबर 146-151)

आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने एक काम किया और लोगों को उसकी तरग़ीब दी, मगर कुछ लोगों ने उस काम से परहेज़ किया। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह बात मालूम हुई, तो आपने ख़ुत्बा दिया। आपने अल्लाह की हम्द-ओ-सना बयान की और फ़रमाया—

> "लोगों को क्या हो गया है कि वे उस चीज़ से परहेज़ करते हैं, जो मैं ख़ुद करता हूँ। ख़ुदा की क़सम! मैं अल्लाह को उनसे ज़्यादा जानता हूँ और उन सबसे ज़्यादा अल्लाह से डरता हूँ।"
>
> (मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6101; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2356)

तशरीह : रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की पूरी ज़िंदगी रहनुमाई के लिए एक आला नमूना की हैसियत रखती है। किसी भी ज़माने में अहले-ईमान के लिए कोई दूसरा मेयार इख़्तियार करना दुरुस्त नहीं। मौजूदा मुसलमानों के रेफरेंस में यह बात ग़ौर करने की है कि बतौर अक़ीदा हम मानते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम क़यामत तक के लिए नमूना हैं, मगर जब मुस्लिम मिल्लत के मसाइल पर बात होती है, तो हर आदमी ख़ुद अपनी अक़्ल से बोलना शुरू कर देता है। कोई ऐसा नहीं करता कि वह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के कलाम और आपकी सीरत में इसका जवाब तलाश करे। हालाँकि ऐसी रविश हमारे ईमान के मुताबिक़ नहीं। पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जिस तरह दौर-ए-अव्वल के लिए नमूना थे, उसी तरह अस्र-ए-हाज़िर में भी आपकी ज़िंदगी में हमारे लिए कामिल रहनुमाई मौजूद है।

(देखिए 'अस्फ़ार-ए-हिंद', सफ़्हा 65-66)

राफ़े बिन ख़दीज रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम मदीना आए और वहाँ लोग खजूर के दरख़्तों में ताबीर का अमल कर रहे थे। आपने पूछा कि तुम लोग यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि हम इसकी ताबीर (pollination) कर रहे थे। आपने फ़रमाया कि अगर तुम ऐसा न करो, तो शायद तुम्हारे लिए बेहतर हो। पस लोगों ने इस अमल को छोड़ दिया। इसके बाद फल कम आए। रावी कहते हैं कि लोगों ने इसका ज़िक्र आपसे किया। आपने फ़रमाया कि मैं एक इंसान हूँ। जब मैं तुम्हें तुम्हारे दीन के बारे में कोई हुक्म दूँ, तो तुम उसे ले लो और जब मैं अपनी राय से कोई हुक्म दूँ, तो मैं एक इंसान हूँ।

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2362)

तशरीह : सहीह मुस्लिम की एक और रिवायत (हदीस नंबर 2363) में ये अल्फ़ाज़ हैं—

أَنْتُمْ أَعْلَمُ بِأَمْرِ دُنْيَاكُمْ.

तुम अपनी दुनिया के बारे में ज़्यादा जानते हो।

असल यह है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का ताल्लुक़ मक्का से था, जहाँ उस वक़्त खजूर के दरख़्त नहीं होते थे। आप हिजरत करके मदीना आए, तो यहाँ खजूर के बाग़ात थे और क़ायदे के मुताबिक़ वहाँ के लोग उन्हें ज़रख़ेज़ करने के लिए अपने हाथ से ताबीर (pollination) का अमल करते थे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए यह ना-मालूम चीज़ थी। चुनाँचे आपने इससे मना फ़रमाया। यह बात उसूल-ए-बाग़बानी के ख़िलाफ़ थी, इसलिए पैदावार में कमी हो गई। ताबीर (pollination) का मामला एक सेक्युलर शोबे से ताल्लुक़ रखता है। इसी तरह टेक्नोलॉजी या साइंस की दूसरी दरयाफ़्तें भी सेक्युलर शोबे से ताल्लुक़ रखने वाली चीज़ें हैं। इस तरह के मामलों में साइंटिफिक रिसर्च का लिहाज़ किया जाएगा।

"तुम अपनी दुनिया के बारे में ज़्यादा जानते हो" का मतलब यह है कि एक पैग़ंबर अल्लाह की हिदायत को बताने के लिए आता है। बाग़बानी, ज़राअत और इंजीनियरिंग जैसे मौज़ुआत की तालीम के लिए नहीं आता। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के बाद इसका मतलब यह होगा कि ज़िंदगी की नजात का तरीक़ा ख़ुदा के कलाम और मेरी सुन्नत से मालूम करो और माद्दी उलूम को अपने तजुर्बात व मुशाहिदात (observation) और साइंटिफिक रिसर्च के ताबे रखो।

अबू मूसा अशअरी रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "मेरी मिसाल और मुझे जो (हिदायत) देकर अल्लाह ने भेजा है, उसकी मिसाल उस आदमी की मानिंद है, जो एक क़ौम के पास आया और कहा कि ऐ मेरी क़ौम के लोगो, मैंने एक लश्कर को अपनी दोनों आँखों से देखा है और (इस ख़तरे के बारे) में मैं खुली वार्निंग देने वाला हूँ। पस तुम लोग अपनी हिफ़ाज़त करो, ख़ुद अपनी हिफ़ाज़त करो। चुनाँचे क़ौम के कुछ लोगों ने उसकी बात पर यक़ीन किया। वे अँधेरे में घरों से निकलकर (महफ़ूज़ जगहों पर) चले गए। पस उन्होंने अपने आपको बचा लिया, लेकिन कुछ दूसरे लोगों ने इसे झुठलाया और अपने घरों में ठहरे रहे। चुनाँचे सुबह-सुबह दुश्मन के लश्कर ने उन पर हमला कर दिया और उन्हें हलाक करके उन्हें नेस्त-ओ-नाबूद कर दिया। यही मिसाल है उसकी, जिसने मेरी बात मानकर मेरी लाई हुई शरीयत की पैरवी की और उसकी, जिसने मेरी नाफ़रमानी की और मेरी लाई हुई शरीयत का इनकार किया।"
>
> (मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7283; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2283)

तशरीह : इस हदीस में ज़िंदगी की हक़ीक़त को एक मिसाल के ज़रिये बताया गया है। हर इंसान जो ज़िंदा है, वह एक दिन मरने वाला है और इसके बाद उसे अपने रब के सामने हिसाब-किताब के लिए खड़ा होना है। यह एक इंतिहाई संगीन ख़तरा है, जिससे हर इंसान दो-चार है। पैग़ंबर इसीलिए आते हैं कि वे इस संगीन ख़तरे से इंसान को आगाह करें। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के बाद उम्मत-ए-मुस्लिमा की भी यही ज़िम्मेदारी है कि वह नस्ल-दर-नस्ल हर ज़माने के लोगों को इस संगीन मसले से आगाह करते रहें। इस ज़िम्मेदारी की अंजामदेही के बग़ैर मुसलमानों का उम्मत-ए-मुहम्मदी होना मुश्तबा है। इसी अमल का नाम दावत इलल्लाह है।

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "मेरी मिसाल उस शख़्स की मानिंद है, जिसने आग जलाई। जब आग ने अपने इर्द-गिर्द का माहौल रोशन कर दिया, तो परवाने और पतिंगे जो आग में गिरा करते हैं, उसमें गिरने लगे और वह उनको रोकने लगा, मगर वे इस पर ग़ालिब आ रहे हैं और आग में गिरते जा रहे हैं। इसी तरह मैं तुम लोगों की कमर पकड़कर तुम्हें आग में गिरने से रोक रहा हूँ और तुम लोग इसमें गिरते जा रहे हो। यही बुख़ारी के अल्फ़ाज़ हैं और मुस्लिम ने भी इसी तरह रिवायत किया है, मगर इसके आख़िर में आपने फ़रमाया कि मेरी और तुम्हारी मिसाल ऐसी है कि मैं तुम्हें कमर से पकड़कर आग से बचा रहा हूँ। आग से निकल आओ, मगर तुम मुझ पर ग़ालिब आ जाते हो और इसमें गिरते जा रहे हो।"
>
> (मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6483; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2284)

तशरीह : दुनिया की रौनक़ें और लज़्ज़तें इम्तिहान के लिए हैं। ख़ुदाई पैग़ाम असलन एक नज़रियाती जद्दोजहद (ideological struggle) है। इसका असल निशाना फ़रीक़े-सानी की सोच को दुरुस्त राह दिखाना होता है। पैग़ंबर या पैग़ंबर की नुमाइंदगी में उनका फॉलोवर लोगों को इस हक़ीक़त से आगाह करता है और कहता है कि दुनिया के फ़रेब से अपने आपको बचाओ और आख़िरत की तैयारी करो यानी ख़ालिक़ के बताए हुए तख़्लीक़ी नक़्शे के मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारो। कामयाब वही है, जो इससे मुतनब्बेह होकर आख़िरत के लिए अमल करे और नाकाम वही है, जो इस इंतिबाह को नज़र-अंदाज़ करके सिर्फ़ दुनिया में मशग़ूल रहे।

अबू मूसा अशअरी रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "अल्लाह ने जिस हिदायत और अमल के साथ मुझे भेजा है, उसकी मिसाल उस बड़ी बारिश जैसी है, जो ज़मीन पर बरसे। फिर ज़मीन का जो हिस्सा ज़रख़ेज़ था, उसने बारिश का पानी क़ुबूल कर लिया और फिर उसने घास और हरा चारा ख़ूब उगाया और ज़मीन का जो हिस्सा बंजर था, उसने बारिश का पानी रोक लिया, जिससे अल्लाह ने लोगों को नफ़ा पहुँचाया। फिर वह पानी उनके पीने और उनकी खेती के काम आया और ज़मीन का एक हिस्सा ढलवान था। पस उसने न तो पानी को रोका और न उसने घास व चारा उगाया। पस यही उस शख़्स की मिसाल है, जिसने अल्लाह के दीन को समझा और उसे उस चीज़ से नफ़ा पहुँचा, जिसे लेकर अल्लाह ने मुझे भेजा है। फिर उसने उसे जाना और उसने उसकी तालीम दी और (दूसरी) मिसाल उस शख़्स की भी है, जिसने उसकी तरफ़ देखने के लिए

सिर नहीं उठाया और अल्लाह की उस हिदायत को क़ुबूल नहीं किया, जिसके साथ मैं भेजा गया हूँ।"

(मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 79; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2282)

तशरीह : इस हदीस में तशबीह की ज़बान में फ़ितरत के इस क़ानून को बताया गया है, जिसे फ़ैज़ ब-क़द्र इस्तिदाद (जितनी क़ाबिलियत, उतना फ़ायदा) कहा जाता है। ज़मीन को बारिश का फ़ायदा उसकी ज़रख़ेज़ी के ब-क़द्र मिलता है। यही मामला इंसान का भी है। ख़ुदा की हिदायत तमाम इंसानों के लिए आम है। पैग़ंबर या पैग़ंबर के फॉलोवर में से किसी के ज़रिये जब हक़ का ऐलान किया जाता है, तो अगरचे यह ऐलान तमाम इंसानों तक पहुँचता है, मगर इसका फ़ायदा हर एक को उसकी पाने की चाहत के ब-क़द्र मिलता है, मगर जो शख़्स जितनी इस्तिदाद का सबूत देगा, उतना ही फ़ायदा उसे हासिल होगा और सबसे बड़ा फ़ायदा जो हिदायत-ए-इलाही से मिलता है, वह मारिफ़त-ए-रब्बानी है।

हर औरत और मर्द के अंदर सच्चाई को पाने का जज़्बा छुपा हुआ है, सच्चाई हर एक का सबसे बड़ा मतलूब है, मगर इंसान इस दुनिया में परेशानियों के जंगल के दरमियान ज़िंदगी गुज़ारता है। इस बिना पर इंसान के अंदर सच्चाई को इख़्तियार करने का अमल (process) दुरुस्त तौर पर जारी नहीं हो पाता। ज़रूरत है कि वह अपने अंदर वह फ़िक्री इस्तिदाद पैदा करे, जिसके ज़रिये वह हक़ और ग़ैर-हक़ के फ़र्क़ को जाने। वह ना-हक़ को छोड़ते हुए हक़ पर अपनी नज़र जमाए रखे। यही वह तरीक़ा है, जो किसी इंसान के लिए सच्चाई से फ़ायदा उठाने का ज़ामिन है।

आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने क़ुरआन (सूरह आले-इमरान) की ये आयतें पढ़ीं—

> "वही है, जिसने तुम्हारे ऊपर किताब उतारी। इसमें बाज़ आयतें वाज़े (clear) हैं, वे किताब की असल हैं और दूसरी आयतें ग़ैर वाज़े हैं। फिर जिनके दिलों में टेढ़ है, वे मुतशाबे आयतों के पीछे पड़ जाते है, फ़ित्ने की तलाश में। हालाँकि उनका मतलब अल्लाह के सिवा कोई नहीं जानता और जो लोग पुख़्ता इल्म वाले हैं, वे कहते हैं कि हम उन पर ईमान लाए। सब हमारे रब की तरफ़ से है और नसीहत वही लोग क़ुबूल करते हैं, जो अक़्ल वाले हैं।" (क़ुरआन, 3:7)

हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि इसके बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "जब तुम उन लोगों को देखो, जो क़ुरआन की आयतों के मुतशाबिहात के पीछे पड़ गए हैं, तो ये वही लोग हैं, जिनका अल्लाह ने इस आयत में ज़िक्र किया है। पस तुम उनसे बचो।"
>
> (मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 4547; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2665)

तशरीह : दीन की जिन बातों का ताल्लुक़ हमारी मालूम दुनिया से है, उन्हें क़ुरआन में मुहकम या सराहत (firm or clarity) की ज़बान में बयान किया गया है। वे अपने सीधे तौर उस्लूब की बिना पर समझने वाले के लिए बिलकुल वाज़ेह हैं और जिन बातों का ताल्लुक़ न मालूम दुनिया से है, उन्हें मुतशाबे या तम्सील की ज़बान में बयान किया गया है, मसलन— (2:229) "الطَّلاَقُ مَرَّتَانِ" यानी "तलाक़ दो बार है" एक ऐसी आयत है, जो मुहकम ज़बान में है। इसी तरह (4:103) إِنَّ الصَّلاَةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ كِتاباً مَوْقُوتاً यानी "बेशक

नमाज़ अहले-ईमान पर मुक़र्रर वक़्तों के साथ फ़र्ज़ है,” यह भी वाज़े उस्लूब की एक मिसाल है। इन दोनों आयतों के मफ़्हूम को हम पूरी तरह समझ सकते हैं।

जहाँ तक मुहकम आयतों का ताल्लुक़ है, ऐसी आयतें इंसान के दायरा-ए-इल्म से ताल्लुक़ रखती हैं। इनकी तफ़्सीलात जानने के लिए इंसान मुकम्मल तहक़ीक़ और ग़ौर-ओ-फ़िक्र कर सकता है, मगर जहाँ तक मुतशाबिहात का ताल्लुक़ है, उनके बारे में तालिब-ए-क़ुरआन को इज्माली मफ़्हूम को ही काफ़ी समझना चाहिए। हज़रत इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु ने बजा तौर पर कहा है—

أَبْهِمُوا مَا أَبْهَمَ اللَّهُ.

“तुम उस चीज़ को ग़ैर-वाज़ेह रहने दो, जिसे अल्लाह ने ग़ैर-वाज़ेह रखा है।”

(अल-अस्ल, मुहम्मद बिन अल-हसन, जिल्द 10, सफ़्हा 182)

मुतशाबे उस्लूब की एक मिसाल यह आयत है—

يَدَاهُ مَبْسُوطَتَانِ.

“ख़ुदा के दोनों हाथ खुले हुए हैं। यह ग़ैब की बात है।”

(क़ुरआन, 5:64)

अल्लाह का हाथ कैसा है, इसे जानना हमारे लिए मुमकिन नहीं। इसका मफ़्हूम हम सिर्फ़ इज्माली ज़बान में समझ सकते हैं। पूरी तरह और हतमी तौर पर इसका मफ़्हूम इस दुनिया में समझा नहीं जा सकता। इस क़िस्म की बातों का हक़ीक़ी इल्म सिर्फ़ अल्लाह को है। इंसान के सामने उन्हें समझ में आने के लिए उन्हें तशबीह व तम्सील की ज़बान में बयान किया गया है। इन तम्सीलात पर मुज्मल अंदाज़ में ईमान रखना चाहिए। तम्सील की तफ़्सीलात तलाश करना एक ग़ैर-संजीदा

फ़ेअल है, जो ज़ेहनी इंतिशार के सिवा आदमी को कहीं और नहीं पहुँचाता। यही लोग हैं, जिन्हें क़ुरआन की मज़कूरा आयत में असहाब-ए-ज़ैग़ कहा गया है यानी सच्चाई से भटकने वाले। पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

إِنَّ اللهَ عز وجل فَرَضَ فَرَائِضَ فَلَا تُضَيِّعُوهَا ، وَحَرَّمَ حُرُمَاتٍ فَلَا تَنْتَهِكُوهَا ، وَحَدَّ حُدُودًا فَلَا تَعْتَدُوهَا ، وَسَكَتَ عَنْ أَشْيَاءَ مِنْ غَيْرِ نِسْيَانٍ فَلَا تَبْحَثُوا عَنْهَا.

"अल्लाह तआला ने कुछ चीज़ों को फ़र्ज़ क़रार दिया है, तो उन्हें तर्क न करो; कुछ चीज़ों को हराम क़रार दिया, तो उनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी न करो और कुछ हुदूद क़ायम की हैं, तो उनसे आगे न बढ़ो और कुछ चीज़ों के बारे में अल्लाह ने ख़ामोशी इख़्तियार की है, भूले बग़ैर, तो उसके बारे में छानबीन न करो।"

(सुनन अल-दारक़ुतनी, हदीस नंबर 4396)

डायरी : 1986

4 जून, 1986

तब्लीग़ी जमात के दो आदमी मिलने के लिए आए। उन्होंने मौलाना उमर पालनपुरी के बारे में कुछ बातें बताईं।

मौलाना उमर पालनपुरी तब्लीग़ी जमात के ख़ास मुक़र्रर हैं। वे रोज़ाना बिला नाग़ा तब्लीग़ी मरकज़ निज़ामुद्दीन में तक़रीर करते हैं। मज़कूरा हज़रत ने बताया कि उनका एक ख़ास अंदाज़ यह है कि वे बिलकुल सादा और आम फ़हम मिसालें देते हैं, मसलन—आज की तक़रीर में वे यह बता रहे थे कि दुनिया की चीज़ें ख़ुदा के

महबूब बंदों को भी मिलती हैं और ख़ुदा के मबग़ूज़ (hated) बंदों को भी। बज़ाहिर मिलने के एतिबार से दोनों यकसाँ नज़र आते हैं, मगर दोनों में बहुत ज़्यादा फ़र्क़ है। उन्होंने मिसाल दी कि तोते के पिंजरे में भी रोटी डाली जाती है और चूहों के पिंजरे में भी, मगर दोनों में बहुत ज़्यादा फ़र्क़ है। चूहे को रोटी उसे पकड़ने के लिए दी जाती है, जबकि तोते को रोटी इसलिए दी जाती है कि वह इसके लिए खाना बने।

मैंने कहा कि इससे आप समझ सकते हैं कि हमारे मिशन और तब्लीग़ी जमात के मिशन में क्या फ़र्क़ है। यह फ़र्क़ तरीक़-ए-इज़हार का है, न कि हक़ीक़त का। तब्लीग़ के लोगों का ख़िताब ज़्यादातर अवाम से होता है, इसलिए वे दीन की बात को बिलकुल सादा और आम फ़हम अंदाज़ में बयान करते हैं। मेरा ख़िताब-ए-ख़्वास (तालीम-याफ़्ता तबक़े) से है, इसलिए हम इसी दीनी पैग़ाम को इल्मी अंदाज़ में और जदीद उस्लूब में पेश करते हैं।

5 जून, 1986

हर साल रमज़ान में किसी रात को ऐसा होता है कि मुझ पर ख़ुसूसी कैफ़ियत गुज़रती है, जिनसे मुझे गुमान होता है कि ग़ालिबन आज ही शब-ए-क़द्र है। इस साल (रमज़ान, 1306 हि.) मेरा गुमान है कि शब-ए-क़द्र 25 रमज़ान की रात को पड़ी।

आज की रात मुझे दूसरी रातों से कम नींद आई। फिर सुबह को फ़ज्र के वक़्त ख़ास कैफ़ियत तारी हुई और एक ऐसी दुआ निकली, जो इससे पहले कभी न निकली थी। मेरी ज़बान पर बे-इख़्तियाराना ये अल्फ़ाज़ हो जारी हो गए—

ख़ुदाया! तेरे बंदे सुलेमान ने तुझसे ऐसी हुकूमत माँगी थी, जो किसी और को न मिली हो। वे एक पैग़ंबर थे और इस दुआ के सज़ावार थे। मैं

एक आजिज़ और गुनहगार बंदा हूँ। मैं तुझसे यह दुआ करता हूँ कि तू मेरी ऐसी मदद कर, जो तूने किसी की न की हो, यह कि तू मुझे क़यामत के दिन बख़्श दे चाहे मैं उसके क़ाबिल भी न हूँ। मेरी सारी ख़ताओं और कोताहियों के बावजूद मुझे जन्नत में दाख़िल कर दे।

फ़ज्र के वक़्त जब मुझ पर यह कैफ़ियत गुज़री, उस वक़्त मेरे ज़ेहन में कोई हदीस वग़ैरह न थी। बाद में मुझे एक हदीस याद आई, जो मज़कूरा गुमान की बिल-वास्ता तस्दीक़ करती है। हदीस में आया है कि हज़रत आयशा ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से पूछा—

"ऐ ख़ुदा के रसूल! अगर मुझे शब-ए-क़द्र मिल जाए, तो मैं क्या करूँ? आपने फ़रमाया कि यह दुआ करो।

اَللّٰهُمَّ اِنَّکَ عَفُوٌ تُحِبُّ الْعَفْوَ فَاعْفُ عَنِّی.

ऐ अल्लाह! बेशक तू माफ़ करने वाला है। तू माफ़ी को पसंद करता है। पस मुझे माफ़ कर।"

(जामे तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 3513)

इस हदीस से एक साथ दो बातें मालूम हुईं— एक यह कि शब-ए-क़द्र की तारीख़ अगरचे क़ुरआन-ओ-हदीस के ज़रिये मुतय्यन नहीं है। हालाँकि यह मुमकिन है कि कोई बंदा-ए-ख़ुदा अपने ज़ाती एहसासात के तहत इसका इदाराक कर सके। दूसरी बात यह कि अगर इस मुबारक लम्हात से किसी का राब्ता क़ायम हो, तो उस पर सबसे ज़्यादा जो कैफ़ियत तारी होगी, वह इस्तिग़फ़ार की कैफ़ियत है, जिसका एक नमूना मज़कूरा दुआ के अल्फ़ाज़ में मिलता है।

6 जून, 1986

दिल्ली के चिड़ियाघर में एक गैंडा था, जिसका नाम रोज़ी था। 30 मई, 1986 को उसका इंतक़ाल हो गय,। जबकि इसकी उम्र छह साल थी। इसका वज़न तीन टन से ज़्यादा था। यह मादा गैंडा थी, जो चंद साल

पहले चंडीगढ़ से लाई गई थी, ताकि दो नर गैंडों के साथ रह सके। वह हामिला थी। गैंडों के यहाँ आम तौर पर 16 महीने में बच्चा पैदा होता है। चुनाँचे जुलाई, 1986 में इसके हमल (pregnancy) की मुद्दत पूरी हो रही थी।

रोज़ी के बारे में यह रिपोर्ट 31 मई, 1986 के टाइम्स ऑफ इंडिया में शाए हुई। इसके बाद जो वाक़या गुज़रा, वह टाइम्स ऑफ इंडिया (4 जून, 1986) के अल्फ़ाज़ में यह था—

> "The response to 'The Times of India' story on the sick Rosy was phenomenal. The phone was constantly ringing as several animal lovers sought to keep in touch with her progress."

बीमार रोज़ी के बारे में टाइम्स ऑफ इंडिया की ख़बर का रिस्पांस ग़ैर-मामूली था। टेलीफ़ोन की घंटी मुसलसल बजती रही, क्योंकि बहुत-से जानवरों से दिलचस्पी रखने वाले लोग हर लम्हा उसकी हालत जानना चाहते थे।

मैंने यह रिपोर्ट पढ़ी, तो मेरे ज़ेहन में सवाल आया कि क्या वजह है कि लोगों को जानवरों के साथ इतनी हमदर्दी होती है, मगर यही हमदर्दी उन्हें इंसानों के साथ नहीं होती। इसका जवाब यह समझ में आया कि जानवर हमेशा अपने दायरे में रहता है, वह कभी इंसान को बिला वजह तकलीफ़ नहीं पहुँचाता। जबकि इंसान हर बार अपने दायरे से बाहर आता है और दूसरे इंसानों को मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से परेशान करता रहता है।

इंसान से मुहब्बत करने के लिए वह दिल चाहिए, जो दूसरे की ज़्यादती के बावजूद उससे मुहब्बत कर सके। चूँकि लोगों के पास इस क़िस्म का बड़ा दिल नहीं, इसलिए इंसान से मुहब्बत करने वाले भी

नहीं। जानवर से मुहब्बत करने में इंसान की बड़ाई नहीं छिनती, जबकि इंसान से मुहब्बत करना उस वक़्त मुमकिन है, जबकि ज़ाती बड़ाई का जज़्बा आदमी अपने अंदर से निकाल चुका हो।

8 जून, 1986

7 जून, 1986 के अख़बारों में यह ख़बर थी कि कन्नड़ ज़बान के मशहूर अदीब डॉक्टर मस्ती वेंकटेश आयंगर (Masti Venkatesha Iyengar) का 95 साल की उम्र में इंतक़ाल हो गया।

डॉक्टर मस्ती 6 जून, 1891 को पैदा हुए थे। दोबारा ऐन उसी तारीख़ 6 जून, 1986 को इस दुनिया से चले गए। डॉक्टर मस्ती ने जहाँ से अपनी ज़िंदगी का सफ़र शुरू किया था, वे दोबारा वहीं पहुँच गए। हर आदमी इसी तरह पीछे की तरफ़ लौटता है। अगरचे ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिनकी वफ़ात भी ऐन उसी तारीख़ को हो, जिस तारीख़ को उनकी पैदाइश हुई थी।

9 जून, 1986

डॉक्टर मोहसिन उस्मानी और जनाब असलम साहब (आई०ए०एस०) मिलने के लिए तशरीफ़ लाए। दोनों ने मुश्तरका तौर पर कहा कि 'अल-रिसाला' में तन्क़ीद नहीं होनी चाहिए, सिर्फ़ मुसबत तौर पर अपनी बात पेश करनी चाहिए।

मैंने कहा कि तन्क़ीद को बुरा मानना सरासर दौर-ए-ज़वाल (period of degeneration) की बात है। दौर-ए-उरूज में कभी तन्क़ीद को बुरा नहीं माना जाता था। सहाबा-ए-किराम के ज़माने में तन्क़ीद का आम रिवाज था। इन लोगों ने कहा कि तन्क़ीद का क्या फ़ायदा है? मैंने कहा कि तन्क़ीद ही से आला इंसान बनते हैं। ज़ेहनी बेदारी और शऊरी इंक़लाब कभी तन्क़ीद के बग़ैर नहीं आ सकता।

उन्होंने कहा कि क़ुरआन में हुक्म है कि नबी का एहतिराम करो, नबी की आवाज़ पर अपनी आवाज़ बुलंद न करो। मैंने कहा कि नबी का मामला एक मुस्तसना मामला है। नबी के ऊपर आप उलमा को क़ियास नहीं कर सकते। डॉक्टर मोहसिन उस्मानी साहब ने कहा कि हदीस में आया है—

عُلَمَاءُ أُمَّتِي كَأَنْبِيَاءِ بَنِي إِسْرَائِيلَ.

"मेरी उम्मत के उलमा बनी इसराईल के अंबिया की मानिंद हैं।"

(अल-मक़ासिद अल-हसना, अल-सख़ावी, हदीस नंबर 459)

इसका मतलब यह है कि उलमा-ए-उम्मत का भी उसी तरह एहतिराम होना चाहिए, जिस तरह अंबिया का किया जाता था।

मैंने कहा कि यह हदीस उलमा के एहतिराम के बारे में नहीं है। यह उलमा की ज़िम्मेदारियों के बारे में है। इसका मतलब यह है कि उम्मत-ए-मुस्लिमा के उलमा वही काम करेंगे, जो बनी इसराईल के अंबिया करते थे। बनी इसराईल के बारे में आया है कि उनकी रहनुमाई बराबर अंबिया करते थे। كَانَتْ بَنُو إِسْرَائِيلَ تَسُوسُهُمُ الأَنْبِيَاءُ (सहीह बख़ारी, हदीस नंबर 3455), मगर पैग़ंबर-ए-इस्लाम के बाद नबुव्वत ख़त्म हो गई। इसलिए यहाँ इंसानों की रहनुमाई के लिए पैग़ंबर नहीं आएँगे, बल्कि उलमा को वह काम अंजाम देना पड़ेगा, जिस काम को पहले अंबिया अंजाम देते थे।

10 जून, 1986

यह बहुत ज़रूरी है कि आदमी जिस काम को लेकर उठे, उसके लिए वह कॉम्पिटेंट (competent) हो, मसलन— मौलाना शिबली नोमानी (1857-1914) ने ज़ोर-ओ-शोर के साथ इस्लामी तालीम का इश्यू उठाया। उस वक़्त कुछ लोगों ने जवाबी तहरीक उठाई कि इस्लामी

तालीम मुस्लिम नौजवानों को पीछे ले जाएगी, क्योंकि इस्लाम इल्म का मुख़ालिफ़ है। इसकी मिसाल यह दी गई कि हज़रत उमर के ज़माने में जब सिकंदरिया (मिस्र) फ़तह हुआ, तो उन्होंने अज़ीम यूनानी कुतुबख़ाने को जला दिया। इस तरह दुनिया पिछले इंसानी दिमाग़ों की विरासत से महरूम हो गई। इसके जवाब में मौलाना शिबली ने ज़बरदस्त तहक़ीक़ करके बताया कि यह कुतुबख़ाना इस्लामी फ़तह से बहुत पहले जलाया जा चुका था। बाद में छठी सदी हिजरी में एक ईसाई इतिहासकार अबू अल-फ़रज मल्ती ने यह किया कि ईसाइयों को इस इल्ज़ाम से बचाने के लिए ग़लत तौर पर इस वाक़ये को मुसलमानों से मंसूब कर दिया।

इसी तरह मौलाना शिबली ने इस्लामी तारीख़ की अज़मत पर किताबें लिखीं। उस वक़्त ज़ोर-शोर के साथ यह बात कही गई कि इस्लाम बराबरी के ख़िलाफ़ है और इसकी एक मिसाल जज़िया है, जो इन लोगों के नज़दीक ग़ैर-मुस्लिम होने का टैक्स है। मौलाना शिबली ने दोबारा निहायत तहक़ीक़ के साथ एक किताब लिखी कि जज़िया ग़ैर-मुस्लिम होने का टैक्स नहीं था, बल्कि फ़ौजी ख़िदमत से मुस्तसना होने का मुआवज़ा था। शिबली की इन तहक़ीक़ात के बाद मुख़ालिफ़ मग़लूब होकर रह गया।

इसके बरअक्स मिसाल मौजूदा ज़माने में शाह बानो बेगम के मसले की है। शाह बानो के मामले में मौजूदा उलमा ने ज़बरदस्त तूफ़ान मचाया और तक़रीरों व तहरीरों के ज़रिये ऐलान किया कि इस्लामी शरीयत में तलाक़ देने वाले शौहर पर ख़र्च की ज़िम्मेदारी नहीं है।

अब जदीद तबक़ा के सामने दो तस्वीरें थीं— एक तरफ़ यह कि इस्लाम एक मर्द को यह हक़ देता है कि वह अपनी बीवी को किसी भी वक़्त तलाक़ देकर रुख़्सत कर दे और उसके ख़र्च की ज़िम्मेदारी न ले। दूसरी तरफ़ वह देख रहा था कि मुल्क का क्रिमिनल प्रोसीजर कोड (दफ़ा 125) यह तजवीज़ करता है कि मुतल्लक़ा को इसका साबिक़ा

शौहर 500 रुपये मासिक की हद तक गुज़ारा अदा करे। इस तक़ाबुल में उन्हें इस्लाम बज़ाहिर कमतर नज़र आया और जदीद क़ानून बरतर। चुनाँचे इस सूरतेहाल को इस्तेमाल करके ग़ैर-मुस्लिमों ने और जिद्दत-पसंद (innovative) मुसलमानों ने इस्लाम को ख़ूब बदनाम किया। यहाँ दोबारा ज़रूरत थी कि इस मौज़ू पर तहक़ीक़ करके दिखाया जाए कि इस्लाम का क़ानून ही ज़्यादा बेहतर है, मगर मौजूदा उलमा में से कोई शख़्स यह काम न कर सका। नतीजा यह हुआ कि शरीयत-ए-इस्लामी के तहफ़्फ़ुज़ की तहरीक अमलन सिर्फ़ शरीयत-ए-इस्लामी को डी-ग्रेड (degrade) करने पर ख़त्म हो गई।

एक नेक इंसान का इंतक़ाल

मारूफ़ दीनी इदारा जामिया दारुस्सलाम उमराबाद (तमिलनाडु) के जनरल सेक्रेटरी मौलाना काका सईद अहमद साहब उमरी (पैदाइश : 1936) का 11 मई, 2024 को इंतक़ाल हो गया। आपका ताल्लुक़ साउथ इंडिया के एक तिजारती ख़ानदान से था। आपके दादा काका मुहम्मद उमर (वफ़ात : 1927) ने जामिया दारुस्सलाम क़ायम किया था। इस इदारे के ताल्लुक़ से मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने लिखा है—

> “जुनूबी हिंद में एक बड़ा तालीमी इदारा है, जो जामिया दारुस्सलाम, उमरा बाद (तमिलनाडु) के नाम से मशहूर है। वह इब्तिदाई तौर पर 1924 में क़ायम हुआ और अब वह एक बड़ा तालीमी मरकज़ बन चुका है। वह इंडिया के चंद बड़े इस्लामी मदरसों में से एक है। इस इदारे के इनविटेशन पर जुनूबी हिंद का सफ़र हुआ।” (माहनामा अल-रिसाला; अक्टूबर, 2010)

मौलाना काका सईद साहब ने इसी इदारे से अपनी दीनी तालीम मुकम्मल की। फिर वे अपने भाई काका मुहम्मद उमर सानी की वफ़ात

(1988) के बाद जामिया के जनरल सेक्रेटरी बनाए गए। आपके ज़माने में जामिया को ग़ैर-मामूली तरक़्क़ी हासिल हुई। आप मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के सीनियर नायब सदर (वाइस प्रेसिडेंट) और कई मिल्ली तंज़ीमों के ज़िम्मेदार भी रहे। आप मिल्लत के हर हलक़े और हर गिरोह में यकसाँ तौर पर इज़्ज़त-ओ-एतिमाद की नज़र से देखे जाते थे।

मोहतरम सेक्रेटरी साहब ने अपने इदारे में दीनी निसाब के साथ अस्री निसाब को भी शामिल किया, ताकि तलबा को दीनी बसीरत के साथ ज़माने की बसीरत भी हासिल हो। इसी तरह आपने माहनामा राह-ए-एतिदाल (जारी-कर्दा 1991) के ज़रिये उम्मत में इख़्तिलाफ़ात को पस-ए-पुश्त डालकर मुत्तहिद व मुत्तफ़िक़ रहने की तरग़ीब दी। जामिया के तहत चलने वाले इदारा-ए-तक़ाबुल-ए-अदयान में आप इंडिया के मशहूर-ओ-मारूफ़ उलमा को बुलाकर लेक्चर करवाया करते थे। इसी सिलसिले के तहत आपने मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान (वफ़ात : 2021) को तीन दिन के लिए जून, 2010 में जामिया दारुस्सलाम मदऊ किया था। यह रूदाद-ए-सफ़र माहनामा 'अल-रिसाला' के अक्टूबर, 2010 के ख़ुसूसी शुमारे में 'जुनूबी हिंद का सफ़र' के उनवान से शाए हो चुका है। इससे पहले भी मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब को जामिया दारुस्सलाम की गोल्डन जुबली (अप्रैल, 1977) में मदऊ किया गया था, जिसमें मौलाना ने 'इस्लामी इंक़लाब : तारीख़-ए-इंसानी के लिए नया मोड़' के उनवान से एक इल्मी-ओ-फ़िक्री मज़मून पढ़ा। यह मक़ाला मौलाना की किताब 'ज़ुहूर-ए-इस्लाम' में शामिल है।

मोहतरम सेक्रेटरी साहब बड़े सादा मिज़ाज थे। आपकी सादा मिज़ाजी का एक वाक़या मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने अपने सफ़र उमराबाद का एक तजुर्बा इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है—

"(एक) मजलिस के दौरान मौलाना काका सईद अहमद उमरी मेरे कमरे में आए। उस वक़्त वहाँ कई असातिज़ा (teachers),

दआत (और इदारा-ए-तक़ाबुल-ए-अदयान के तलबा) बैठे हुए थे, जो उन्हें देखकर खड़े हो गए। काका साहब ने उन लोगों को सख़्ती के अंदाज़ में खड़े होने से मना किया और कहा कि आप लोग जैसे बैठे हैं, उसी तरह बैठे रहें, उठने की कोई ज़रूरत नहीं। इसके बाद काका साहब ख़ामोशी के साथ कमरे में एक तरफ़ ख़ाली जगह देखकर बैठ गए। यह मंज़र मैंने सिर्फ़ जामिया दारुस्सलाम में देखा।" (अल-रिसाला; अक्टूबर, 2010)

राक़िम-उल-हुरूफ़ ने इंतिहाई क़रीब से मोहतरम सेक्रेटरी साहब का मुशाहिदा किया है। आपकी शख़्सियत की चंद क़ाबिल-ए-नमूना ख़ुसूसियात यह थीं— आप बेहद सादा-मिज़ाज और तकल्लुफ़ात से ख़ाली थे। बोल्ड फ़ैसला लेना (bold decision), हर छोटी-बड़ी नेमत की क़द्र करना, संजीदगी व शालीनता और वक़्त की बे-इंतिहा पाबंदी वग़ैरह। आप न सिर्फ़ अपनी तर्बियत और तज़्किया (purification) के लिए कोशिश करते रहते थे, बल्कि अपने इदारे के अफ़राद की तर्बियत के लिए भी हर मुमकिन कोशिश करते रहते थे। आप बहुत ही दर्दमंदी के साथ इस क़िस्म की बातें दोहराया करते थे— रब्बानी इंसान बनना, इंसानियत के लिए ख़ैर-ख़्वाह बनना, नार-ए-जहन्नुम से ख़ुद भी बचना और बिरादरान-ए-वतन को भी बचाना वग़ैरह।

यह एक हक़ीक़त है कि तब्लीग़ के फ़ील्ड में मेरे आने का एक मुहर्रिक मोहतरम सेक्रेटरी साहब थे। जामिया से फ़राग़त के बाद मैं रोज़गार के लिए क़तर चला गया। इस दौरान जनाब सेक्रेटरी साहब क़तर आए और लोगों के सामने ख़ुदाई पैग़ाम को पहुँचाने की अहमियत व हिंदुस्तान में इसके लिए साज़गार माहौल को बयान किया, तो मुझे समझ में आया कि दीनी तालीम का असल मक़सद तो इंसानों को ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से आगाह करना है, चुनाँचे मैं क़तर से इंडिया वापस आ गया और मोहतरम सेक्रेटरी साहब की मदद से इस मैदान में लग गया।

मोहतरम सेक्रेटरी साहब ने गुज़िश्ता साल के तक़सीम-ए-इस्नाद के सालाना इजलास (5 मार्च, 2023) में अपने फ़ारिग़ीन को नसीहत करते हुए जो कुछ कहा था, उनमें से चंद बातें यह हैं—

"फ़िक्री इख़्तिलाफ़ के बावजूद दूसरों को बरदाश्त कीजिए। दूसरों से हुस्न-ए-ज़न रखिए। उनकी ख़िदमात और ख़ूबियों का एतिराफ़ कीजिए। हर हाल में दीन की ख़िदमत हो, यही ख़ुलूस की पहचान है। हक़ीक़त-पसंदी के साथ सोचिए, तो इन हालात के लिए हम मुसलमान भी ज़िम्मेदार हैं। अगर हमने अपने अख़्लाक़-ओ-किरदार से इस्लाम की दुरुस्त तर्जुमानी की और इस्लाम का पैग़ाम बिरादरान-ए-वतन तक पहुँचाने की कोशिश की, तो इंशा अल्लाह! यह अँधेरा छँट सकता है। दीन-ए-हक़ की पैग़ाम-रसानी सरासर मोहब्बत और हमदर्दी का काम है। इस दर्द के साथ हमें बिरादरान-ए-वतन को अपनी मोहब्बत का मौज़ू बनाना है। अपनी सालिहियत और सलाहियत, दोनों का मेयार बुलंद करने की फ़िक्र कीजिए, तभी आप ज़माने के साथ चल सकेंगे।"

(ब-हवाला : मौलाना मुहम्मद रफ़ी कुलोरी उमरी, मुदीर माहनामा राह-ए-एतिदाल, उमराबाद)

इस क़िस्म की नसीहतें आप हमेशा जामिया के फ़ारिग़ीन को किया करते थे।

मोहतरम सेक्रेटरी साहब की वफ़ात हमारे लिए यक़ीनन ग़म का बाइस है, मगर अल्लाह तआला के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से किसी को इस्तिसना (exception) हासिल नहीं, हर एक को लौटकर उसी के पास जाना है। ताहम क़ाबिल-ए-इत्मीनान बात यह है कि मोहतरम सेक्रेटरी साहब ने अपने पीछे नेक वारिसीन और अपने इदारे के सालेह फ़ारिग़ीन

(alumini) की बड़ी तादाद को छोड़ा है। पूरी उम्मीद है कि मोहतरम सेक्रेटरी साहब के बाद उनसे फ़ैज़-याफ़्ता ये हज़रात इस अरबी शेर के मिस्दाक़ साबित होंगे— إِذَا مَاتَ مِنَّا سَيِّدٌ قَامَ سَيِّدٌ (जब हममें से एक सरदार वफ़ात पाता है, तो दूसरा सरदार खड़ा हो जाता) वे मोहतरम सेक्रेटरी साहब के बाद भी रब्बानियत और हक़ की पैग़ाम-रसानी के रास्ते पर क़ायम रहेंगे। अल्लाह तआला से उम्मीद है कि वह मोहतरम सेक्रेटरी साहब की मग़फ़िरत करके जन्नत में आला मुक़ाम अता करेगा।

—हाफ़िज़ सैयद इक़बाल अहमद उमरी, उमराबाद

ख़बरनामा इस्लामी मरकज़— 283

3 से 21, जनवरी 2024 को चेन्नई में बपासी (BAPASI) के ज़ेरे-एहतिमाम 47वाँ बुक फेयर मुनाक़िद हुआ, जिसमें सी०पी०एस० तमिलनाडु के ख़तीब इसरारुल हसन, के० नदीम अहमद, ताजुद्दीन, फ़ैज़ अहमद क़ादरी और इक़बाल उमरी ने स्टॉल का इंतज़ाम सँभाला। स्टॉल पर गुडवर्ड बुक्स और अल-रिसाला मिशन की किताबें अंग्रेज़ी और तमिल ज़बान में रखी गईं, साथ में मुख़्तलिफ़ ज़बानों में तराजिम-ए-क़ुरआन के नुस्ख़े भी रखे गए। अकसर लोगों ने बड़े शौक़ से क़ीमतन क़ुरआन हासिल किया। बहुत-से लोगों को स्पिरिचुअल गिफ़्ट के तौर पर क़ुरआन और दीगर इस्लामिक लिटरेचर दिए गए। दीन-ए-हक़ को लोगों तक पहुँचाने के लिए बुक फेयर की अहमियत का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक साहब बुक फेयर के आख़िरी दिन मुलाक़ात के लिए आए और इस बात का इज़हार किया कि मैं सिर्फ़ आप लोगों से मुलाक़ात करने और शुक्रिया अदा करने के लिए आया हूँ, क्योंकि आपने मुझे गुज़िश्ता बुक फेयर में एक तमिल तर्जुमा-ए-क़ुरआन का नुस्ख़ा गिफ़्ट किया था, मैं इसे मुसलसल पढ़ रहा हूँ।

क़ौमी काउंसिल बराए फ़रोग़-ए-उर्दू ज़बान (NCPUL) के ज़ेरे-एहतिमाम मुंबई में 6 से 14 जनवरी, 2024 को 'उर्दू बुक मेला' ऑर्गेनाइज़ किया गया। स्टॉल का इंतज़ाम जनाब नसीरुल्लाह साहब (बैंगलोर), आसिफ़ ख़ान साहब (कानपुर) और हाफिज़ सैयद इक़बाल उमरी (तमिलनाडु) ने सँभाला। बुक फेयर में मौलाना वाहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताबें और गुडवर्ड की चिल्ड्रन बुक्स काफ़ी दिलचस्पी के साथ ख़रीदी गईं। मुंबई सी०पी०एस० टीम से हर दिन कोई-न-कोई साथी हमारे साथ मेले में शिरकत करता था। इस दौरान अल-रिसाला मिशन के क़दीम साथियों से भी मुलाक़ातें हुईं। इन लोगों ने मिशन के लिए अपनी जद्दोजहद का तज़्किरा किया। जैसे एक बुज़ुर्ग साथी जनाब अल्ताफ़ साहब ने फ़रमाया कि आज जिस BKC ग्राउंड में बुक मेला लगा हुआ है, एक ज़माने में यहाँ जंगल हुआ करता था। इस मैदान में पहला तब्लीग़ी इज्तिमा हुआ, तो मैं इस मौक़े पर अल-रिसाला मिशन की किताबें एक बेड शीट में लपेटकर कंधे पर लादकर इज्तिमा-गाह में पहुँचा था और किताबें फ़रोख़्त की थीं। फिर उन्होंने मौलाना के साथ गुज़रे हुए लम्हात और वाक़यात का तज़्किरा किया, मसलन— यह कि मौलाना को आर०एस०एस० के लोग अपने प्रोग्रामों में बतौर मेहमान बुलाया करते थे और नमाज़ वग़ैरह की सहूलियात भी मुहैया करते थे। एक मर्तबा ऐसा हुआ कि स्टेज पर ही नमाज़ का वक़्त हो गया, तो इन लोगों ने वहीं नमाज़ पढ़ने का इंतज़ाम किया। मौलाना स्टेज पर सबके सामने नमाज़ अदा करने लगे। जब मुक़र्रिर ने मौलाना को नमाज़ पढ़ते हुए देखा, तो उसने भी अपनी तक़रीर रोक दी थी। चुनाँचे हज़ारों हिंदुओं के मजमे ने इंतिहाई ख़ामोशी के साथ मौलाना के नमाज़ अदा करने का मुशाहिदा किया।

—मौलाना सैयद इक़बाल अहमद उमरी, उमराबाद, तमिलनाडु

On March 11, 2024, CPS International hosted an 'Interfaith' gathering, welcoming a delegation from the United States. The delegation was led by Dharmacharya Mr. Shantum Seth, representing the Zen tradition. The dialogue was led by Dr. Farida Khanam, alongside members of CPS. After the program the delegates were given books as spiritual gifts.

Good day, I received the Quran translation and the book you sent, and I want to thank you so much for providing these. This is by far the best translation of the Quran I have come across, especially as someone who is learning about Islam. I often encounter many confusing things online and in books, which make it difficult for me to stay focused on the true message. I've gone through the many resources available online for reading, but I was wondering if there is something that provides a summary of each Surah (chapter) of the Quran? An explanation that briefly talks about what each chapter is about, its meaning, origin, etc. Your help would be greatly appreciated. Thank you for your support! (Ali Martinez via Email)

To: **aleem****@gmail.com, May 6, 2024, Subject: The Quran:

I was given The Quran translation at an Egyptian restaurant in Orlando (Florida, USA). I am 42 years old. Raised Christian, baptized as a little girl. I opened the Quran and began to read it. I am overcome with emotions. I am only at the beginning, The Heifer. I have

read every page from Introduction to Heifer. I commit to reading the entire thing. I have never felt so close to God in my life: ‘‘So remember Me; I will remember you.’’ (2:152) When I read that part, I cried. I felt at peace. I felt protected. I felt safe. I felt that God is near. I felt a love that I have never felt before. I can’t wait to keep reading. Most times, I can’t put it down, but I have to because I have to work and take care of my son (I’m a single mother; my son is 10 years old). I can’t put it down. I would read all night if I could, but I have to get up early. I take notes, go online, and look for answers. I find fulfillment in the Quran.

AsSalamu alaykum wa rahmatullahi wa barakatuh, My name is Yumna Buhidma, and I am the Finance Officer of the University of Ottawa Muslim Student Association (UOMSA) in Canada. I wanted to get in touch with you about ordering Quran translations to distribute to students. As you may know, Canada has two official languages, English and French, and so as a Muslim Student Association, it’s very important that we provide accessible Islamic resources to people in both languages. I wanted to know if it’s possible to place an order for 100 copies of the French Quran and was also wondering if there is any deal that we can agree on (such as a bulk discount or any special offers). As a Muslim Student Association, we really try to make the best use of our funds, so any help or deal that we can agree upon is greatly appreciated. Jazakum Allahu khairan!

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

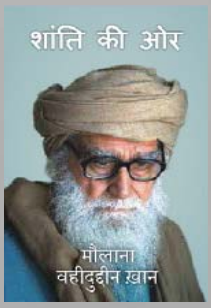

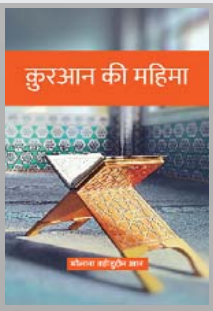

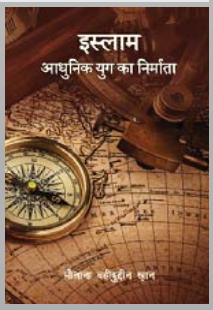

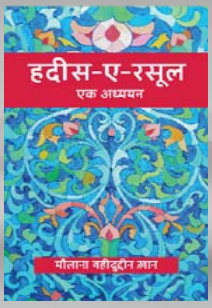

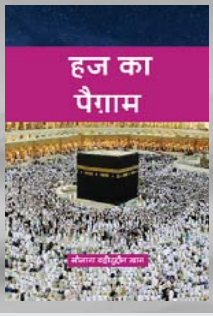

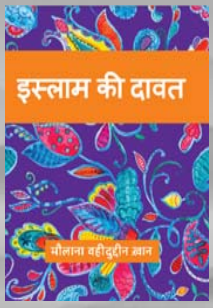

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

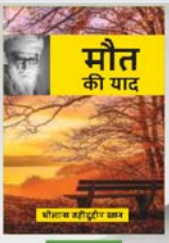

₹40/-

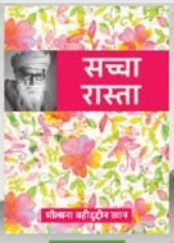

₹20/-

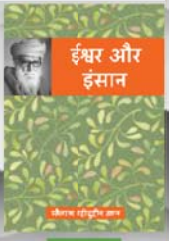

₹40/-

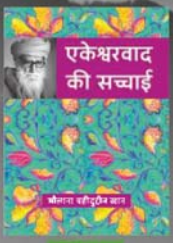

₹30/-

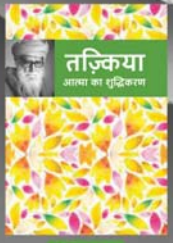

₹45/-

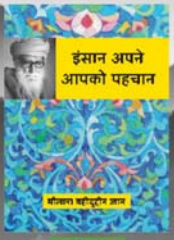

₹20/-

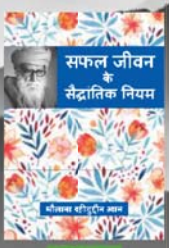

₹40/-